

# भारत में उच्च शिक्षा में प्रवेश पर आरक्षण का प्रभाव

— ♦ थॉमस ई. वाइसकॉफ़

क्या आरक्षण से कोई बदलाव आता है ? आरक्षण सारी बहस एक सैद्धांतिक और अनुभवजन्य शून्य के बीच हो रही है। थॉमस ई. वाइसकॉफ़ इसे कुछ हद तक सुधारने की कोशिश करते हैं। वे उन चंद अध्ययनों का हवाला देते हैं जो भारतीय समाज पर आरक्षण के असर की पड़ताल करते हैं। साक्ष्यों के आधार पर वे दलील देते हैं कि आरक्षण का असर सीमित है, हालांकि नगण्य नहीं है और वह धीरे-धीरे भारतीय कुल वर्ग की प्रकृति को बदल रहा है।

**भा**रत या अन्य देशों जैसे अमेरिका में जहां सकारात्मक भेदभाव की नीतियां लागू हैं, वहां वे लगातार विवादास्पद बनती जा रही हैं। ये नीतियां इनके समर्थकों व विरोधियों दोनों की भावनाओं को उद्देलित करती हैं और उनके खण्डन-मण्डन करने वाले आलेखों के साथ विद्वत्तापूर्ण आलेखों ने, विषय पर व्यापक सार्वजनिक बहसों, अनेक प्रदर्शनों व कानूनी दावों को भी जन्म दिया है। यही वह संदर्भ है, जिसमें रोशनी से अधिक गर्मी उपजती है। मेरा मानना है कि सकारात्मक भेदभाव का आनुभाविक विश्लेषण हमें इसकी वांछनीयता के विवेकपूर्ण मूल्यांकन की ओर ले जा सकेगा।

‘इकोनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली’ में छपे एक पूर्व के आलेख (वाइसकॉफ़ 2001) में मैंने अमेरिका के उच्च शिक्षण संस्थानों में सकारात्मक ‘भेदभाव व उसके प्रभावों संबंधी आनुभाविक शोध की समीक्षा की थी, जो अमेरिका में सकारात्मक पक्षपात लागू करने का एक महत्वपूर्ण दायरा है। इस आलेख में मेरा मकसद उसी क्षेत्र में भारत में भेदभावपूर्ण नीतियों के प्रभाव से संबंधित आनुभाविक प्रमाण एकत्रित करने और उनका विश्लेषण करने का है। मैं प्रयास करूंगा कि गत 50 वर्षों में जिस प्रकार भारत के उच्च शिक्षण संस्थानों में आरक्षण नीति लागू की जा रही है उसके सकारात्मक व नकारात्मक दोनों ही नतीजों की मैं समीक्षा करूं। दुर्भाग्य से उपलब्ध प्रमाण अपनी व्यापकता में सीमित हैं, खासतौर से दूरगामी नतीजों के संदर्भ में। फिर भी पिछले 3 दशकों में क्रमशः कई प्रासंगिक शोध हुए हैं, जो अब उच्च शिक्षा के दाखिलों पर आरक्षण नीतियों के प्रभाव पर अधिक रोशनी डालती है।

आलेख के प्रथम भाग में मैं उच्च शिक्षण संस्थानों में नामांकन आंकड़ों के माध्यम से आरक्षण नीतियों के प्रभाव को जाचूंगा। दूसरे भाग में, मैं इन संस्थाओं में छात्रों के अकादमिक प्रदर्शन के प्रमाण को देखूंगा

: आरक्षण के लाभार्थी अध्ययन में कैसे रहते हैं ? तीसरे भाग में आरक्षण के दूरगामी परिणामों पर ध्यान केंद्रित करूंगा : आरक्षण लाभार्थी विश्वविद्यालयी अध्ययन के बाद अपने जीवन में कैसा प्रदर्शन करते हैं। अंततः, चौथे भाग में मैं सभी प्रमाणों का सार-संक्षेप प्रस्तुत कर भारत के उच्च शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश में आरक्षण नीतियों के नतीजों के बारे में कुछ टिप्पणियां करूंगा।

## भाग-I

### भारतीय विश्वविद्यालयों में नामांकन तथा आरक्षण नीतियां

#### उच्च शिक्षा में अनुसूचित जाति (अजा) व अनुसूचित जनजाति (जजा) के नामांकन<sup>1</sup> :

पिछली अर्ध शताब्दी में भारत में उच्च शिक्षण संस्थानों में नामांकन तेजी से बढ़ा है। 1950 में यह 2 लाख से बढ़कर 2000 में लगभग 70 लाख हो चुका है।<sup>1</sup> इस दौरान उच्च शिक्षण संस्थानों के अजा तथा जजा छात्रों का कुल प्रवेशों में प्रतिनिधित्व भी धीरे-धीरे बढ़ा है। 1970 से 1990 के दशक के बाद के वर्षों में अजा छात्रों का अनुपात 7 प्रतिशत से बढ़कर 7.8 प्रतिशत तथा जजा छात्रों का अनुपात 1.6 प्रतिशत से बढ़कर 2.7 हो गया (राव 2002 : 47)। इन प्रतिशत आंकड़ों की तुलना भारत की कुल आबादी में अजा व जजा के अनुपात से की जानी चाहिए जो क्रमशः 16 प्रतिशत व 8 प्रतिशत है।<sup>2</sup> अतः सहस्राब्दी के अंत तक उच्च शैक्षिक संस्थानों में अजा व जजा के छात्रों का प्रतिनिधित्व कुल आबादी में उनके वास्तविक प्रतिनिधित्व से तकरीबन आधा व एक तिहाई था।<sup>3</sup>

भारतीय महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों में जो विभिन्न डिग्री कार्यक्रम चलते हैं उनमें अजा व जजा छात्रों का विभाजन असमान है (चानना 1993 : मानव संसाधन विकास 1977)। भारत में उच्च शिक्षा में कुल नामांकित छात्रों में से लगभग 40 प्रतिशत छात्रों का दाखिला तुलनात्मक रूप से कम प्रतिष्ठा वाले कला पाठ्यक्रमों में होता है; पर इन्हीं कार्यक्रमों में अनुसूचित जाति के छात्रों का प्रतिशत 60 व अनुसूचित जनजाति के छात्रों का प्रतिशत 75 है। तदनुसार, सबसे प्रतिष्ठित कार्यक्रमों- इंजीनियरिंग, विधि तथा चिकित्सा- में अजा व जजा छात्रों का नामांकन शेष आबादी से काफी कम है। आश्चर्य नहीं कि स्नातकोत्तर तथा पीएचडी स्तर में अजा व जजा छात्रों का प्रतिनिधित्व स्नातक स्तर पर कार्यक्रमों की तुलना में और भी कम है।

उच्च संस्थानों से निकलने वाले दलित तथा आदिवासी छात्रों की

संख्या के विषय में उपलब्ध प्रमाण सीमित हैं। मैंने जनगणना के आंकड़ों की मदद से यह हिसाब लगाया कि भारतीय उच्च संस्थानों के कुल स्नातकों में अजा के छात्रों का अनुपात जो 1961 में 0.9 प्रतिशत था, 1981 में बढ़कर 3.3 प्रतिशत हो गया और जजा के छात्रों का अनुपात जो 1961 में 0.1 प्रतिशत था, वह 1981 में बढ़कर 0.8 हो गया। बेशक तब से अजा व जजा छात्रों का अनुपात और भी बढ़ा होगा। फिर भी 1981 में अजा व जजा के स्नातक भारत के कुल स्नातकों में मात्र 3 व 1 प्रतिशत का ही प्रतिनिधित्व करते थे- जो कुल आबादी में उनके हिस्से से काफी कम था।

#### अजा तथा जजा के नामांकन पर आरक्षण नीति का प्रभाव

इसमें शक नहीं कि भारतीय उच्च शैक्षिक संस्थानों में अजा व जजा छात्रों के नामांकन के अधिसंख्यक भाग का श्रेय आरक्षण नीतियां को दिया जा सकता है। परन्तु यह अनुमान लगा पाना बेहद कठिन है कि इन नीतियों ने वास्तव में क्या अंतर संभव किया है। यह अनुमान लगाना कठिन केवल इसलिए ही नहीं होता कि उच्च शिक्षा के नामांकन का पूरा ब्यौरा उपलब्ध नहीं है, बल्कि कठिनाई इस बात से भी पैदा होती है कि शैक्षिक क्षेत्र में भारतीय आरक्षण नीतियों का ढांचा तथा उन्हें लागू करने की विधि भी बेहद पेचीदा है। अब्बल तो ये नीतियां केवल सार्वजनिक संस्थानों पर लागू होती हैं। बेशक, भारत की अधिकांश उच्च शिक्षण संस्थाएं केंद्रीय या राज्य स्तरीय सरकारी नियंत्रण में ही हैं; परन्तु निजी संस्थाओं की संख्या 1990 के दशक से निरंतर बढ़ रही है।

लगभग सभी केंद्र नियंत्रित उच्च शिक्षण संस्थानों में 15 प्रतिशत सीटें अजा तथा 7.5 प्रतिशत सीटें जजा के लिए आरक्षित हैं; ये अनुपात इसलिए बनाए गए थे क्योंकि राष्ट्रीय आबादी में दलितों व आदिवासियों का अनुपात यही था।<sup>4</sup> यद्यपि 1950 के दशक के प्रारंभ में ही उच्च शैक्षिक संस्थानों में अजा व जजा सीटों के आरक्षण की राष्ट्रीय नीति स्थापित हो चुकी थी, विभिन्न संभागों व संस्थानों में इसके वास्तविक क्रियान्वयन में एक-दो दशक लगे और अब तक भी समूचे भारत में हर जगह यह पूर्णतः लागू नहीं हो सकी है। जो उच्च शिक्षा संस्थान राज्य स्तर पर नियंत्रित होते हैं उनमें अजा व जजा के लिए आरक्षित स्थानों का अनुपात राज्य की आबादी में (लगभग) उनके अनुपात के अनुसार तय होता है। कुछ राज्यों में अन्य पिछड़ी जातियों (ओबीसी) के लिए भी कुछ प्रतिशत सीटें आरक्षित होती हैं।

सामान्य प्रवेश की सीटें, आवेदकों में से प्रासंगिक परीक्षा में सर्वोच्च प्राप्तांक पाने वालों से प्रारंभ हो उससे कम प्राप्तांकों के क्रम में, भरी

जाती हैं। जहां अन्य पिछड़े वर्ग की सीटें आरक्षित हैं, वहां भी लगभग हमेशा ही- ऊंचे प्राप्तांकों से घटते क्रम में दाखिले होते हैं, यद्यपि उनका कटऑफ-योग्यता के लिए न्यूनतम निर्धारित-अंक कुछ कम होता है। अजा व जजा आरक्षित स्थानों में न्यूनतम योग्यता अंक सामान्य प्रवेश के आवेदकों की तुलना में काफी कम रखा जाता है और कुछ संस्थाओं में तो न्यूनतम परीक्षा अंक की आवश्यकता भी नहीं रहती; अजा व जजा छात्रों के लिए आयु सीमा भी हटा दी जाती है। इस सबके बावजूद अक्सर अजा व जजा के लिए आरक्षित सीटें खाली रह जाती हैं- खासकर अधिक प्रतिष्ठित संस्थानों में- क्योंकि इन समूहों के माध्यमिक शिक्षा समाप्त करने वाले आवेदकों की पर्याप्त संख्या ही नहीं होती, जो अन्यथा बाकी शर्तों को पूरी करते हों।<sup>17</sup>

आरक्षण नीतियों के प्रभाव का एक ठोस प्रमाण हमें पटवर्धन व पलशीकर के (1992) के अध्ययन में मिलता है- जो पुणे, महाराष्ट्र के एक प्रतिष्ठित संभागीय मेडिकल कॉलेज पर किया गया था। उन्होंने पाया कि अजा, जजा छात्रों के लिए आरक्षित सीटों में प्रवेश लेने वालों के सैम्पल में से तकरीबन 1/6 छात्रों के प्रवेश परीक्षाओं के प्राप्तांक इतने ऊंचे थे कि वे सामान्य प्रवेश वाले छात्रों की तरह भी भर्ती किए जा सकते थे। ओबीसी छात्रों की आरक्षित सीटों के मामले में यह आंकड़ा लगभग 5/6 था (पटवर्धन व पलशीकर 1992 : 44)।

तो भारत की उच्च शिक्षण संस्थाओं में अजा व जजा छात्रों के लिए आरक्षण नीतियों के बारे में हम क्या निष्कर्ष निकाल सकते हैं ? पहली बात तो यह है कि हम निश्चित रूप से दावा कर सकते हैं कि भारत के प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों तथा प्रोफेशनल तकनीकी संस्थान (जिनमें अधिकांश केंद्र द्वारा नियंत्रित हैं) के लगभग सभी अजा व जजा छात्रों को आरक्षित सीटों के बिना प्रवेश नहीं मिल पाता। बेहद कम अजा व जजा छात्र प्रतिष्ठित संस्थानों में सामान्य प्रवेश की सीटों की स्पर्धा में सफल हो पाते, क्योंकि उच्च गुणवत्ता वाले माध्यमिक स्कूलों या निजी अनुदान वाली तैयारी कार्याशालाओं व कोचिंग संस्थाओं तक उनकी पहुंच बिरले ही होती है, जो संपन्न परिवारों के छात्रों को एक खास पैनापन प्रदान करते हैं। प्रवेश के लिए कमतर कट-ऑफ के बावजूद ठेठ अजा व जजा छात्र इन संस्थानों में उपलब्ध आरक्षित सीटों को भरने के पास नहीं आ पाते।

भारत के अधिकांश उच्च शिक्षण संस्थानों में जहां प्रवेश आवश्यकताएं प्रतिष्ठित शिक्षण संस्थानों की तुलना में कहीं कमतर होती हैं, अजा व जजा नामांकन का श्रेय आरक्षण नीतियों को कितना दिया जाए, यह अनुमान लगाना और भी कठिन है। इन साधारण संस्थानों में काफी बड़ी संख्या में अजा व जजा छात्रों के प्रासंगिक परीक्षा के

प्राप्तांक इतने होते हैं कि उन्हें सामान्य श्रेणी में भी प्रवेश मिल सकता था। कई मामलों में आरक्षण नीतियों का प्रभाव सिर्फ इतना भर है कि वे लाभार्थी छात्रों को संस्थागत चयन व गुणवत्ता के पदसोपान में ऊपर उठा देती हैं। फिर भी आरक्षित सीटों के बिना, अजा व जजा के संभावित छात्रों के लिए उच्च शिक्षण संस्थानों का आकर्षण संभवतः काफी घट जाए। अब्बल तो आरक्षित सीटों का प्रावधान अजा व जजा के छात्रों को बेहतर गुणवत्ता वाली शिक्षण संस्थानों में प्रवेश दिलवाता है- कारण कि इससे नौकरी बाजार में उच्च शिक्षा की अधिक मूल्यवान डिग्री उन्हें मिल पाती है। दूसरे, आरक्षित सीट पर प्रवेश मिलने पर वित्तीय व अन्य सरकारी सहयोग तक उसकी पहुंच बनती है, जिसके अभाव में उसके लिए टिककर अध्ययन जारी रखना कठिन होता। छात्रवृत्तियों, विशेष छात्रावास, भोजन, शिक्षा सामग्रियों व पुस्तकों के सरकारी प्रावधानों ने उच्च शिक्षा संस्थानों में दाखिला पाने व पढ़ाई जारी रखने में कई अजा व जजा छात्रों की मदद की है। यद्यपि यह सहायता अमूमन इन छात्रों की सभी वित्तीय व सामाजिक जरूरतों की आपूर्ति नहीं करती, परन्तु फिर भी वह अध्ययन जारी रख पाता/पाती है या नहीं, इस पर असर अवश्य डालती है (मिण्डेलसन व विकजिएनी 1998)।

उच्च शिक्षा में भारतीय आरक्षण नीति के व्यापक संख्यात्मक महत्त्व को समझ पाने के लिए मैं यह अनुमान लगाने की चेष्टा करूंगा कि कितने अजा व जजा के छात्र आरक्षण नीतियों के कारण 'वांछनीय' उच्च शिक्षा कार्यक्रमों में नामांकित होने में सक्षम हो सके। एक मोटा अनुमान यह है कि कम प्रतिष्ठा वाले कला पाठ्यक्रमों के अलावा शेष कार्यक्रम (तुलनात्मक रूप से) वांछनीय हैं। राव (2002 : 47, तालिका-1) के अनुसार वर्ष 1996-97 में भारतीय विश्वविद्यालयों में लगभग 5 लाख 10 हजार अजा के छात्र तथा 1 लाख 80 हजार जजा छात्र नामांकित हुए थे। पिछले भाग में मैं यह बता चुका हूँ कि तकरीबन 60 प्रतिशत अजा व 75 प्रतिशत जजा छात्र कला वर्ग के पाठ्यक्रमों में नामांकित होते हैं। इन आंकड़ों का निहितार्थ है कि लगभग 2 लाख अजा छात्र तथा 45 हजार जजा छात्र शेष कार्यक्रमों- यानी वाणिज्य, विज्ञान, इंजीनियरिंग आदि में नामांकित हुए होंगे। इनमें नगण्य मात्रा में छात्र कुछ ऐसे पाठ्यक्रमों के लिए भी योग्य रहे होंगे, जो तुलनात्मक रूप से कम कठिन हों। अतः, मोटे अनुमान के हिसाब से आरक्षण नीति के कारण वांछनीय पाठ्यक्रमों में प्रवेश पाने वाले अजा-जजा छात्रों की संख्या करीब 2 लाख होगी।

तो कुल मिलाकर इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि 1990 के दशक में भारत की उच्च शिक्षण संस्थाओं में पढ़ रहे कुल अजा-जजा

छात्रों में से करीब एक तिहाई आरक्षण नीतियों के कारण प्रवेश पाकर, तुलनात्मक रूप से वांछनीय पाठ्यक्रमों में अध्ययन कर रहे थे।<sup>8</sup> अगर हम इस संभावना को भी जेहन में रखें कि महत्वपूर्ण संख्या में अजा-जजा छात्र आरक्षण नीतियों के प्रोत्साहन के कारण उच्च शिक्षा के कम वांछनीय पाठ्यक्रमों से जुड़े रहे होंगे, तो हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि 1990 के दशक में जो 7 लाख अजा-जजा छात्र उच्च शिक्षण संस्थाओं में नामांकित थे, उनमें से तकरीबन आधों के जीवन में आरक्षण नीतियों ने असर डाला। फिर भी पिछले भाग में जिन आंकड़ों को उद्धृत किया गया है उनसे संकेत यह मिलता है कि आजादी के 50 वर्षों बाद भी भारतीय उच्च शिक्षण संस्थाओं में अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित स्थानों में कम से कम आधी तथा अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित स्थानों में दो-तिहाई स्थान खाली रह जाते हैं।

### **आरक्षण नीति तथा नामांकित लाभार्थी छात्रों की अकादमिक योग्यताएं :**

पूर्व में प्रस्तुत प्रमाण दर्शाते हैं कि भारत की उच्च शिक्षण संस्थाओं में हालिया दशकों में अजा-जजा छात्रों के नामांकन में काफी वृद्धि हुई है; यद्यपि इस वृद्धि के बावजूद इन संस्थाओं में उनका प्रतिनिधित्व आबादी में उनके वास्तविक अनुपात से काफी कम है। बेशक आरक्षण नीतियों ने अजा-जजा छात्रों को वे अवसर उपलब्ध करवाए हैं, जिनसे वे कॉलेज तथा विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा जारी रख पाते हैं। पर ऐसा अधिकतर इसलिए संभव हो पाया है क्योंकि अजा-जजा छात्रों के लिए प्रवेश संबंधी परीक्षाओं के न्यूनतम प्राप्तांक काफी कम रखे जाते हैं अर्थात् जितने अंकों की सामान्य श्रेणी के छात्रों से अपेक्षा रखी जाती है, उनकी तुलना में कहीं कम प्राप्तांक होने पर भी उन्हें विश्वविद्यालयों में प्रवेश मिलता है। यद्यपि प्रवेश परीक्षा के अंकों को उच्च शिक्षा में प्रदर्शन का कोई श्रेष्ठ संकेत नहीं माना जा सकता, फिर भी निम्न अंक, जो अजा-जजा छात्रों की विशेषता है, खासकर प्रतिष्ठित संस्थानों में, यह तो दर्शाते ही हैं कि विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा के लिए जो अकादमिक तैयारी आवश्यक है, उसमें उनकी तैयारी कम है। कम प्राप्तांक व अपर्याप्त तैयारी, दोनों ही सामाजिक-आर्थिक वंचना से जुड़े हैं और किसी ठेठ अजा या जजा छात्र द्वारा उच्च शिक्षा को अनुभव प्रारंभ करने में आने वाली चुनौती को और कठिन बनाते हैं।

प्रतिष्ठावान भारतीय संस्थाओं में अजा व जजा छात्रों की स्थिति का अच्छा उदाहरण है आईआईटी (इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलोजी) में दाखिल अजा-जजा छात्रों का अनुभव। आईआईटी- भारत के सबसे

श्रेष्ठ छात्रों को आकर्षित करता है। 5 मुख्य आईआईटी संस्थाओं<sup>9</sup> ने 1970 के दशक से प्रवेश में आरक्षण नीति लागू की थी और सामान्य प्रवेश के छात्रों की तुलना में प्रवेश परीक्षा के कट-ऑफ को अजा व जजा छात्रों के लिए काफी कम किया था। प्रारंभिक समय के बाद आरक्षण के माध्यम से प्रवेश पाने वाले अजा व जजा छात्रों में से कई छात्रों की तैयारी कमजोर पाई गई और वे पाठ्यक्रम छोड़ गए। इस पर आईआईटी ने उन छात्रों के लिए साल भर का तैयारी कार्यक्रम बनाया जिनके प्राप्तांक सामान्य प्रवेश के छात्रों के कट-ऑफ से दो तिहाई से भी कम थे। इन छात्रों को तैयारी कार्यक्रम को सफलतापूर्वक पूरा करने के बाद केवल आरक्षित स्थानों पर ही प्रवेश मिलता है। फिर भी 1990 के मध्य में जब आरक्षण नीतियां व उससे संबंधित कार्यक्रम दो दशक से लागू हो चुके थे एवं प्रक्रिया ठीक से स्थापित हो चुकी थी, इसके बावजूद अजा-जजा छात्रों के लिए आरक्षित कई स्थान खाली रह जाते थे। 1994-95 के प्रवेश आंकड़े यह संकेत देते हैं कि अजा छात्रों के लिए आरक्षित सीटों में केवल आधी ही भर पाती हैं तथा जजा छात्रों के लिए यह आंकड़ा 1/6 से भी कम है।<sup>10</sup>

गैर-प्रतिष्ठावान उच्च शिक्षण संस्थानों में भी अजा व जजा छात्रों के लिए आरक्षित स्थान अक्सर खाली रहते हैं। आइकारा (1980) के अनुसार 1970 के दशक में गुजरात के मेडिकल कॉलेजों में 5 प्रतिशत से भी कम आरक्षित सीटें भर पाई थीं। वेलासकर (1986) ने मुम्बई के मेडिकल कॉलेजों पर एक उपयोगी शोध किया, जिससे निम्नोक्त आंकड़े मिल सके। 1969 में अजा छात्रों के लिए आरक्षित स्थानों में से 11 प्रतिशत से भी कम स्थान भर सके थे। मुम्बई के मेडिकल कॉलेजों के न्यूनतम आवश्यक मानक तब कम किए गए। परन्तु 1979-80 तथा 1980-81 में भी अजा-जजा कोटे का मात्र एक तिहाई स्थान ही भर सके और कई स्थानों पर तो एक भी अजा-जजा छात्र प्रवेश नहीं पा सका। हाल में मुम्बई के मेडिकल कॉलेजों में अजा के लिए आरक्षित सीट अक्सर पूरी भरती हैं (परन्तु अक्सर उनमें ऐसे छात्र भी होते हैं जिनका अनुसूचित जाति का होना निर्विवाद नहीं है); परन्तु देश के अन्य मेडिकल कॉलेज इस क्षेत्र में अब भी काफी पीछे हैं। जो अजा छात्र मेडिकल कॉलेजों में नामांकित होते हैं वे ज्यादातर वर्चस्व वाली कुछ दलित जातियों तथा संपन्न दलित परिवारों से आते हैं, जो शहरी इलाकों में बसे हैं तथा निजी माध्यमिक स्कूलों में पढ़े हैं। अधिकतर अजा आवेदकों के संपन्न पृष्ठभूमि से होने की वृत्ति यह सुझाती है कि प्रवेश पाने वाले अजा छात्रों की अकादमिक योग्यता का औसत स्तर संभवतः बढ़ रहा है। इस तथ्य के भी कुछ प्रमाण मिलते हैं कि समय के साथ आरक्षित स्थानों पर प्रवेश पाने वाले अजा व जजा छात्र के प्राप्तांकों तथा सामान्य श्रेणी में प्रवेश पाने

वाले छात्रों के प्राप्तांकों में, कम से कम बेहतर शिक्षण संस्थानों में अंतर घट रहा है। इस संबंध में सबसे श्रेष्ठ प्रमाण पटवर्धन तथा पलशीकर (1992) के असाधारण रूप से बढ़िया शोध से मिलता है। इन शोधकर्ताओं ने एक संभागीय मेडिकल कॉलेज, पुणे स्थित बीजे मेडिकल कॉलेज जो पुणे विश्वविद्यालय से संबद्ध है, के आंकड़ों को एकत्रित तथा विश्लेषित किया। यह कॉलेज पांच भिन्न श्रेणियों में छात्रों को दाखिल करता है। ये हैं- सामान्य प्रवेश सीटें, ओबीसी, अजा, जजा तथा विमुक्त जनजाति (जो स्थानीय आदिवासी समुदायों का समूह है)। 1970, 1980 तथा 1985 में आयोजित प्रवेश परीक्षाओं में छात्रों के प्राप्तांकों की तुलना कर अध्ययन में पाया गया - जिसमें आश्चर्य की बात भी न थी - कि सामान्य श्रेणी के छात्रों के प्राप्तांकों का कट-ऑफ सर्वाधिक था तथा ओबीसी, अजा तथा आदिवासी श्रेणियों में प्राप्तांक क्रमवार घटते गए थे। अध्ययन में यह महत्वपूर्ण वृत्ति भी दर्ज की गई कि प्रत्येक श्रेणी में प्रवेश के लिए कट-ऑफ प्राप्तांक क्रमशः बढ़ते गए, साथ ही विभिन्न श्रेणियों के बीच अंकों का फासला घटता गया। लेखकों का कहना है कि आरक्षित वर्ग में कट-ऑफ में बढ़त की यह वृत्ति अंशतः द्वितीय पीढ़ी प्रभाव (सैकेण्ड जेनरेशन इफेक्ट) के कारण है, जिसमें ओबीसी अजा तथा जजा आवेदकों में कई ऐसे माता-पिता की संतानें हैं, जो अपनी शैक्षिक तथा सामाजिक-आर्थिक स्थिति को इसलिए सुधार सके क्योंकि उन्हें शैक्षिक संस्थाओं में आरक्षण की सुविधा मिल सकी थी।

### मलाईदार परत (क्रीमी लेयर) का मुद्दा

भारत में आरक्षण नीतियों के आलोचक इनके असमान होने का दावा करते हैं क्योंकि वे कीमती शैक्षिक अवसर मुख्यतः संपन्न आवेदकों की 'मलाईदार परत' (क्रीमी लेयर)- को उपलब्ध करवाती हैं, न कि अधिक जरूरतमंद वंचित समूहों को। अतः तर्क यह किया जाता है कि अजा व जजा आवेदकों के लिए आरक्षण इन समूहों में विषमता बढ़ाता है और साथ ही सामान्य प्रवेश वाले अन्य आवेदकों के लिए अवसर भी घटाता है, जो अजा जजा लाभार्थियों से भी खराब स्थिति में हो सकते हैं।

मुझे ऐसे कोई प्रमाण नहीं मिले हैं जो इस प्रश्न को प्रत्यक्ष रूप से संबोधित करते हों कि विश्वविद्यालयों के प्रवेश में आरक्षण नीतियों ने सामान्य आबादी के संपन्न आवेदकों की कीमत पर संपन्न दलितों व आदिवासियों को लाभ पहुंचाकर असमानता बढ़ाई हो। यह तय करने के लिए कि क्या आरक्षण के कारण सच में ऐसा असमान पुनर्वितरण हुआ है, हमें अजा व जजा लाभार्थियों की सामाजिक-आर्थिक वर्ग की पृष्ठभूमि की तुलना उन सामान्य श्रेणी के आवेदकों से करनी

होगी जिन्हें विश्वविद्यालयों में प्रवेश से विस्थापित किया गया। परन्तु ऐसे आंकड़े उपलब्ध ही नहीं हैं। भाग दो में जिन प्रमाणों की चर्चा की गई, वे यह स्पष्ट करते हैं कि विश्वविद्यालयों के विभिन्न पाठ्यक्रमों में दाखिला पाने वाले अजा व जजा छात्र गैर अजा व जजा छात्रों की तुलना में काफी कम संपन्न सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि से आते हैं। यह तथ्य सुझाता है कि यह संभावना कम है कि जो गैर अजा-जजा आवेदक आरक्षण नीतियों के कारण प्रवेश नहीं पा सके वे लाभार्थी अजा-जजा छात्रों की तुलना में अधिक विपन्न थे।

अजा-जजा समूहों के अन्दर आरक्षण नीतियों के पुनर्वितरण प्रभाव के प्रमाणों का कोई अभाव नहीं है। इस बात में भी शंका नहीं कि भारतीय विश्वविद्यालय प्रवेशों में आरक्षण नीतियों का लाभ उठाने वाले दलित व आदिवासी छात्र निश्चय रूप से अधिकांशतः उस मलाईदार परत के होते हैं। कुछेक अपवादों के सिवाय केवल अधिक संपन्न दलित व आदिवासी बच्चे ही माध्यमिक स्तर तक स्कूलों में टिक पाते हैं और यो कॉलेज या विश्वविद्यालय में प्रवेश की आवेदन करने की स्थिति में आते हैं। महाराष्ट्र के प्राथमिक व माध्यमिक स्कूलों में अपव्यय (वेस्टेज) तथा गतिहीनता (स्टैग्नेशन) के एक केस अध्ययन में हैनरीक्स तथा वानखेड़े (1985) दर्शाते हैं कि जो अजा व जजा छात्र अपना सैकेण्ड्री अध्ययन पूरा कर पाते हैं, उनमें लड़कियों की तुलना में लड़के तथा दलित व आदिवासी आबादी के सबसे ऊपरी सतह से होने की संभावना ही अधिक रहती है। यह सच है कि उच्च शिक्षा भविष्य में बेहतर आय की संभावना प्रस्तुत करती है, पर उसके पहले स्कूली सामग्री, आवास तथा संभवतः आवागमन पर व्यय करना पड़ता है। इन मद्दों पर होने वाले खर्च की आपूर्ति बिरले ही सरकारी सहायता कार्यक्रमों द्वारा होती है, अर्थात् बेहतर माली हालत वाले छात्र ही माध्यमिक स्तर के बाद उच्च शैक्षिक संस्थाओं में कई साल लगा पढ़ सकते हैं।

वेलासकर (1986 : 604) अवलोकन टिप्पणी करती हैं '... स्पष्ट है कि (आरक्षण) नीति लगातार दलित आबादी में तुलनात्मक रूप से संपन्न भागों के मध्यम दर्जे का प्रदर्शन करने वालों की पहुंच बढ़ाने का माध्यम बनी रही है।' वे यह भी दर्ज करती हैं कि अजा के छात्रों का एक छोटा भाग ऐसा भी है जिसका प्रदर्शन सामान्य प्रवेश वाले छात्रों के समान स्तर का होता है; ये अच्छा प्रदर्शन करने वाले छात्र सामान्यतः संपन्न अजा परिवारों से आते हैं तथा अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में शिक्षित होते हैं। पटवर्धन तथा पलशीकर (1992) का निष्कर्ष है कि आरक्षण शहरी तथा पुरुष छात्रों का पक्षधर है तथा अजा समूह की चुनिंदा उपजातियों तथा जजा समूह की कुछ खास जनजातियों

को अनुपातहीन लाभ पहुंचाता है। वे आगे सुझाते हैं कि आरक्षित सीटों का लाभ उठाने वाले अधिकाधिक संख्या में इन सौभाग्यशाली समूहों की दूसरी पीढ़ी से आते हैं, जिनके परिवार सकारात्मक पक्षपात का लाभ उठाकर मध्यवर्गीय या उच्च मध्यवर्गीय श्रेणी तक पहुंच चुके हैं। जबकि अधिक पिछड़ी अजा उपजातियां व जनजातियां इनसे स्पर्धा करने में कठिनाई महसूस करती हैं। इस प्रस्तावना की प्रतिष्ठित आईआईटीयों के अनुभवों से स्पष्ट पुष्टि होती है : कृपाल तथा गुप्ता (1999 : 148) ने पाया कि उनके द्वारा चुने गए सैम्पल के 40 प्रतिशत अजा व जजा छात्र जो आईआईटी बीटैक में 1989 से लेकर 1992 तक दाखिल हुए, वे द्वितीय पीढ़ी के लाभार्थी थे - यह प्रतिशत निश्चित रूप से उस वक्त से कहीं अधिक है, जब 1970 के दशक में आईआईटी के प्रवेशों में आरक्षण लागू किया गया था।

राव ने भी इसी अवलोकन की पुष्टि यह लिखकर की, '... आरक्षण की योजनाएं लाभार्थी वर्ग में ठीक उसी तरह का संगुच्छन (क्लस्टरिंग) पैदा करता है जिसके समाधान के लिए उन्हें रचा गया था... लाभार्थियों में जो पहले ही सर्वाधिक सुविधाएं पा चुके हैं वे ही लाभों का अनुपातहीन फायदा भोगते हैं' (राव 2001 : 51)। यह प्रक्रिया अजा तथा जजा समूहों में उपजाति तथा जनजाति के स्तर पर तथा उनके सामाजिक-आर्थिक वर्गों के स्तर पर काम करती है। फलस्वरूप यह मांग उठी है कि आरक्षित सीटों में बारीक विभाजन हो ताकि सबसे विपन्न उपजातियों व जनजातियों को (जो अमूमन सबसे कम आरक्षित स्थान पाते हैं) अपनी-अपनी अलग आरक्षण श्रेणी का हक मिल सके।<sup>11</sup>

यह प्रमाण स्पष्टतः इस दावे की पुष्टि करता है कि विश्वविद्यालय स्तर के प्रवेशों में आरक्षण नीतियों के कारण, कम से कम उनके प्रत्यक्ष प्रभाव में, दलितों तथा आदिवासियों में असमानताएं बढ़ी हैं। क्योंकि ये लाभ दलित तथा आदिवासी आबादियों में सबसे संपन्न व्यक्तियों व उप-समूहों को ही मिल पाए हैं। फिर भी सकारात्मक पक्षपात की नीतियां अप्रत्यक्ष रूप से लाभार्थी समूहों के कम संपन्न लोगों को भी लाभान्वित कर सकती हैं, क्योंकि प्रत्यक्ष लाभार्थी प्रभावी रूप से सक्षम बन अपने कम संपन्न रिश्तेदारों व समुदाय के अन्य सदस्यों को नौकरियां या दूसरी तरह की सहायता देकर मदद कर सकते हैं। ऐसे अप्रत्यक्ष लाभों के आनुभाविक महत्त्व पर भारत में काफी गर्मागर्म विवाद है।

सच्चिदानन्द (1977) का 'संभ्रांत हरिजनों' पर किया गया काम इस आम नजरिए का पक्षधर है कि आरक्षण नीतियों ने एक सुविधा-संपन्न दलित श्रेणी की रचना की है, जो अपने विकास के प्रति निष्ठावान है तथा व्यापक दलित समुदाय की उपेक्षा करता है। ऐसी आलोचना

स्वयं उन दलितों में भी फैली है, जो आरक्षित पदों पर प्रतिष्ठित अनुसूचित जाति के लोगों पर घटिया होने के कलंक से चिंतित हैं। परन्तु मेन्डेलसन तथा विकिजएनी (1988 : अध्याय 8) ने दलित संसद सदस्यों के साथ साक्षात्कारों के प्रतिवेदन में सुझाया है कि कुलीन होने का आभास देने के बदले स्थापित प्रतिकूल ताकतों के ढांचे के तहत अक्सर वे स्वयं भी व्यक्तिगत, भौतिक व सामाजिक वंचनाओं से जूझते नजर आते हैं। मेन्डेलसन तथा विकिजएनी को ऐसे खास प्रमाण नहीं मिले कि आरक्षण नीतियों ने खासतौर से स्वार्थी व दायित्वहीन दलित राजनीतिकों के समुदाय की रचना की है। बल्कि वे सच्चिदानन्द के निष्कर्ष को ही सिर के बल उलटते नजर आते हैं। उनके अनुसार 'अस्पृश्यों में एक अधिक कुलीन समूह की रचना सामान्य अस्पृश्य आबादी के लिए भी लाभदायक हो सकती है (पृ. 255), क्योंकि यह उन्हें उनके समुदायों में नेताओं के रूप में एक अधिक सशक्त व स्वतंत्र भूमिका निभाने में सक्षम बनाती है।

## भाग-II

### आरक्षण नीतियां तथा भारतीय विश्वविद्यालयों में अकादमिक प्रदर्शन

#### आरक्षण लाभार्थियों का अकादमिक प्रदर्शन

उच्च शिक्षा में अजा व जजा छात्रों के अकादमिक प्रदर्शन संबंधी आंकड़ों की उपलब्धता सीमित है। अधिकांशतः, ये आंकड़े आरक्षित सीटों पर अजा व जजा छात्रों के ही हैं। जहां कुछ अन्य अजा व जजा छात्र शामिल किए भी गए हैं, उनकी संख्या बेहद कम है। अतः उपलब्ध आंकड़े उन लोगों के अनुभव को प्रतिबिम्बित करते हैं जिन्हें आरक्षण नीतियों से लाभ हुआ है। आगामी अनुच्छेदों में मैं सर्वाधिक प्रासंगिक अध्ययनों व खोजों का उल्लेख कालक्रम के अनुसार करूंगा।

उच्च शिक्षण संस्थाओं में अजा व जजा छात्रों के अकादमिक प्रदर्शन के शुरुआती व्यवस्थित अध्ययन छठे दशक के अंत तथा सातवें दशक के प्रारंभ तक के एकत्रित आंकड़ों पर आधारित थे। कारलेकर (1975) ने यूजीसी (यूनिवर्सिटी ग्रांट्स कमीशन) द्वारा 15 विश्वविद्यालयों में 1965-66 के अकादमिक वर्ष के सर्वेक्षण की रिपोर्ट दी है। इस सर्वेक्षण ने पाया कि कुल 4,100 अजा छात्रों में (जो विविध स्नातक तथा स्नातकोत्तर कार्यक्रमों में थे) केवल 36 प्रतिशत छात्र परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो सके। गैलान्टर (1984 : 63) 1969 में महाराष्ट्र सामाजिक कल्याण विकास द्वारा एक अध्ययन को उद्धृत करते हैं, जिसमें पाया गया था कि केवल 8 प्रतिशत अजा व जजा छात्र नियत चार वर्षों में अपनी कॉलेज डिग्री अर्जित कर पाते हैं तथा

कुल मिलाकर केवल 15 प्रतिशत ऐसे छात्र अंततः अपनी डिग्री पाते हैं। जो ऐसा कर पाते हैं वे भी औसतन काफी कम अंक पाते हैं। चिटनिस (1981) ने 1960 के दशक के उत्तरार्ध में मुम्बई के कला तथा विज्ञान कॉलेजों का एक सर्वेक्षण किया और पाया कि अजा छात्र उन कॉलेजों में नामांकित होते हैं, जो मुम्बई विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित परीक्षाओं में सबसे कम सफलता पाते हैं। किसी भी कॉलेज में अजा छात्रों का औसत अकादमिक प्रदर्शन गैर-अजा छात्रों से अपव्यय (वेस्टेज) तथा गतिहीनता (स्टैग्नेशन) की दर काफी अधिक है।

भारतीय सामाजिक विज्ञान शोध परिषद् (आईसीएसएसआर) ने 1972-73 में 15 राज्यों में हाई स्कूल तथा कॉलेज स्तर के अजा व जजा छात्रों की एक प्रमुख शोध परियोजना प्रायोजित की थी। इस परियोजना के नतीजों पर रिपोर्ट करते हुए चिटनिस ने (1981) संकेत किया कि अधिकांश अजा-जजा उत्तरदाता अध्ययन में संतोषजनक प्रगति कर रहे थे। पहले उन्होंने यह भी दर्ज किया कि अध्ययन यह नहीं बताता कि अन्य छात्रों की तुलना में अजा छात्रों का प्रदर्शन कैसा रहा। उन्होंने चेतावनी दी कि अजा छात्र शैक्षिक कैरियर के दौरान विविध चुनौतीपूर्ण बाधाओं का सामना करते हैं। कारलेकर (1975) आईसीएसएसआर के कुछ सर्वेक्षणों के आंकड़ों, उपरोक्त यूजीसी अध्ययन तथा अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग के वार्षिक प्रतिवेदनों के आंकड़ों का उपयोग कर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि शैक्षिक संस्थाओं में अजा में अजा के छात्र, ऊंची ड्रॉप आउट दर (मुख्यतः आर्थिक दबावों के कारण) के साथ तुलनात्मक रूप से कम अकादमिक अंक पाने का अनुभव करते हैं।

विश्वविद्यालय स्तर पर अजा छात्रों के अकादमिक प्रदर्शन पर एक सूचनात्मक अध्ययन आइकारा (1980) ने किया था। इस अध्ययन में मुम्बई के 10 कॉलेजों के 1970 के दशक के प्रारंभिक वर्षों के आंकड़े एकत्रित किए गए थे। इन कॉलेजों में विविध क्षेत्रों (कला, विज्ञान, वाणिज्य, विधि, चिकित्सा तथा इंजीनियरिंग) कार्यक्रम चलाए जा रहे थे। इनमें से कुछ निजी कॉलेज थे तो कुछ सरकारी। इन कॉलेजों में नामांकित छात्रों (जो डिग्री अवधि के चारों वर्षों के थे) में अध्ययन अवधि के समय अजा छात्रों का अनुपात 10 प्रतिशत से कुछ अधिक था। अधिकांश अजा छात्र निजी कॉलेजों में नामांकित थे (जो कम प्रतिष्ठावान तथा कम मांग करने वाले थे) तथा इनमें से अधिकतर एक अकेले कॉलेज में थे जो मुख्य अजा छात्रों की सेवा में रत था। बहुत कम अजा छात्र (अधिक प्रतिष्ठावान व अधिक मांग करने वाले) सरकारी कॉलेजों तथा बेहद इच्छित मेडिकल तथा

इंजीनियरिंग कॉलेजों में नामांकित थे। बहुत ही कम अजा छात्र (अधिक प्रतिष्ठावान व अधिक मांग करने वाले) सरकारी कॉलेजों में या चिकित्सा तथा इंजीनियरिंग कॉलेजों में अध्ययनरत थे।

दसों कॉलेजों के तीन अकादमिक वर्षों 1970 से 1973 तक के दौरान अजा के छात्रों तथा गैर अजा के श्रेणी विभक्त सैम्पल के प्रदर्शन की तुलना करने पर आइकारा ने पाया कि केवल 23 प्रतिशत अजा छात्र ही वर्ष की समाप्ति पर होने वाली परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो पाए थे, जबकि गैर अजा छात्रों में 52 प्रतिशत उत्तीर्ण हुए थे। जो छात्र उत्तीर्ण नहीं हो सके, उनमें दोनों ही श्रेणियों के अधिकांश छात्रों ने परीक्षा तो दी पर असफल रहे और यों उसी कक्षा में सड़ते रहे : शेष छात्रों ने तो परीक्षाएं भी नहीं दीं और वे कॉलेज से निकल गए। कॉलेज से निकल जाने वाले अजा छात्रों में बड़ी संख्या में छात्र अपने प्रथम वर्ष में ही कॉलेज छोड़ गए, पर अजा छात्रों में ड्रॉप आउट होने वाले छात्रों में कई तो अपने द्वितीय व तृतीय वर्ष में भी थे। 1970 में दाखिला लेने वाले अजा छात्रों में तकरीबन 60 प्रतिशत अगले तीन सालों में कॉलेज से बाहर निकल गए। आइकारा के पास उन छात्रों के सही आंकड़े नहीं थे जो अंततः स्नातक बन सके; पर यह अनुमान विवेकसम्मत लगता है कि अंततः उत्तीर्ण होने वाले अजा छात्रों की संख्या 20 प्रतिशत से कम होगी।

सभी दसों कॉलेजों में अजा छात्रों का अकादमिक प्रदर्शन गैर-अजा छात्रों की तुलना में कमतर था। एक रोचक बात यह नजर आई जो (चंद) अजा छात्र अधिक चुनौतीपूर्ण सरकारी तथा मेडिकल व इंजीनियरिंग कॉलेजों में नामांकित हुए उनमें उत्तीर्ण होने की संभावना उन (अधिकतर) अजा छात्रों से कहीं अधिक थी, जो अन्य कॉलेजों में नामांकित हुए थे। प्रतिष्ठित सरकारी तथा/या मेडिकल व इंजीनियरिंग कॉलेजों में नामांकित अजा छात्र कम प्रतिष्ठित कॉलेजों के अजा छात्रों की तुलना में कहीं अधिक उत्प्रेरित, अधिक कुशल तथा बेहतर तैयारी वाले थे और उन्हें अधिक सहयोग भी प्राप्त था। जाहिर है कि आरक्षण के बिना ऐसे अजा छात्रों का नामांकन अधिक चुनौतीपूर्ण कॉलेजों या अध्ययन क्षेत्रों में और भी कम होता। आइकारा मुम्बई के कॉलेजों के इस अध्ययन से निष्कर्ष यह निकालते हैं कि अच्छा प्रदर्शन करने वाले स्वाल्प अजा छात्रों के अपवाद के सिवा अधिकांश अजा छात्रों में अपव्यय और गतिहीनता की दर ऊंची है तथा गैर अजा छात्रों की तुलना में उनके प्रदर्शन और प्रगति की दर काफी कम है।

1970 के दशक में मुम्बई के मेडिकल कॉलेजों के जिस शोध का पूर्व में उल्लेख किया गया था, उसमें वेलासकर (1986) ने पाया था कि

तकरीबन 25 प्रतिशत अजा छात्र ही समय पर अपना डिग्री कार्यक्रम पूरा कर पाते हैं, जबकि गैर अजा छात्रों में तीन चौथाई छात्र ऐसा कर पाते हैं। वकील (1985 : 138) ने रायपुर स्थित नेहरू मेडिकल कॉलेज में 1960 के दशक के अंत तथा 70 के दशक के प्रारंभ में प्रवेश पाने वाले चंद अजा के छात्रों के बारे में भी ठीक ऐसा ही पाया था। वहां प्रवेश पाने वाले 42 छात्रों में मात्र चार ही मानक साढ़े चार वर्षों में अध्ययन पूरा कर पाए। 23 छात्रों को इसमें आठ साल लग गए। वेलासकर ने पाया कि अधिकांश अजा छात्र, अंततः, मुम्बई के मेडिकल कॉलेजों में अध्ययन पूरा कर पाते हैं, पर उन्हें अमूमन इसमें कुछ अतिरिक्त वर्ष लगाने पड़ते हैं। इसके विपरीत लगभग सभी गैर अजा छात्र समय पर अध्ययन पूरा कर पाते हैं। उन्होंने यह भी गौर किया कि मेडिकल कॉलेजों में दाखिल होने वाले अजा छात्र की अकादमिक पृष्ठभूमि गैर-अजा छात्रों की तुलना में ओबीसी छात्रों तथा सामान्य प्रवेश वाले छात्रों की तुलना में अधिक कमजोर होती है। साथ ही कुछ उपवादों को छोड़ दें, तो उनका प्रदर्शन भी कमजोर रहता है। इसके बावजूद वेलासकर ने पाया कि यह संभावना अधिक रहती है कि मुम्बई के मेडिकल कॉलेजों में प्रवेश पाने वाले अजा छात्र लगातार जुटे रहें और अन्ततः स्नातक डिग्री पा लें, बनिस्बत उन छात्रों के जो इंजीनियरिंग कॉलेजों में दाखिल होते हैं। ऐसा, संभवतः, इसलिए होता है क्योंकि मेडिकल कॉलेजों का सामाजिक वातावरण स्थानीय व सहज रहता है, जिसे वे अपने अनुकूल पाते हैं। अजा छात्र अन्य कॉलेजों में व्याप्त राष्ट्रीय संस्कृति व खासकर अंग्रेजी भाषा के वातावरण में असहजता महसूस करते हैं।<sup>12</sup>

अजा तथा जजा छात्रों के अकादमिक प्रदर्शन संबंधी हालिया प्रमाण 1990 के दशक में प्रकाशित दो उम्दा डिजाइन व क्रियान्वयन वाले अध्ययनों से मिलते हैं। इनमें पहला अध्ययन पटवर्धन तथा पलशीकर (1992) का है, जिसका पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है। इन अध्ययन कर्ताओं ने आरक्षित सीटों पर आने वाले छात्रों के न केवल अकादमिक रिकॉर्ड संकलित किए (प्रवेश के समय तथा कॉलेज के प्रत्येक वर्ष के दौरान) बल्कि साथ ही सामान्य प्रवेश वाले छात्रों के एक नियंत्रित समूह (कंट्रोल ग्रुप) के रिकॉर्ड भी एकत्रित किए, जो 1970 से लेकर 1980 के वर्षों के थे। उन्होंने आरक्षित तथा सामान्य सीटों पर प्रवेश पाकर स्नातक बनने वाले पर्याप्त संख्या के छात्रों को प्रश्नावलियां भेजी तथा प्रत्येक उत्तरदाता के साथ व्यक्तिगत साक्षात्कार किया। नीचे कॉलेज में आरक्षित सीटों पर दाखिल छात्रों के प्रदर्शन संबंधी इन शोधकर्ताओं के नतीजे दिए जा रहे हैं। भाग तीन में मैं कॉलेज अध्ययन समाप्त करने के बाद उनके प्रदर्शन संबंधी नतीजों की समीक्षा करूंगा।

जैसी उम्मीद थी, औसत परीक्षा अंकों में शीर्ष से घटते क्रम में सबसे पहले सामान्य छात्र (शीर्ष पर) फिर ओबीसी, फिर अजा और अंत में जजा छात्र थे।<sup>13</sup> लगभग यही क्रम बेशक प्रतिलोम रूप में किसी परीक्षा को पास करने में लगे वर्षों से लेकर डिग्री कार्यक्रम समाप्त करने में लगे सालों में तथा उन छात्रों के अनुपात में मिलता है जो देर-सबेर ड्रॉप-आउट हो जाते हैं। फिर भी, अन्ततः, स्नातक डिग्री पाने वाले अजा तथा जजा छात्रों का अनुपात प्रभावशाली है। जो छात्र 1972-76 में कॉलेज में दाखिल हुए (तथा 1984 में स्नातक हुए) उनमें से 92 प्रतिशत अजा छात्र स्नातक बन सके तथा 87 प्रतिशत जजा छात्र।

पटवर्धन तथा पलशीकर ने पाया कि बी जे मेडिकल कॉलेज में प्रवेश करते समय अजा तथा जजा छात्र अन्य छात्रों से अकादमिक रूप से पिछड़े हुए थे तथा अध्ययन के दौरान वे और भी अधिक पिछड़ जाते हैं। परन्तु शोधकर्ताओं ने इसके बावजूद यह पाया कि एक बार प्रवेश पाने के बाद अजा तथा जजा छात्रों में से केवल 25 से 30 प्रतिशत छात्र ही संतोषजनक से कम प्रदर्शन करते हैं- अध्ययन छोड़कर या डिग्री कार्यक्रम पूरा करने में आठ वर्ष से भी अधिक समय लगाकर या अंतिम परीक्षा में न्यूनतम उत्तीर्ण अंकों से बस कुछ ही अधिक अंक पाकर। इसके अलावा, लेखकों का अनुमान यह भी है कि उनके अध्ययन समाप्त होने के बाद से अजा व जजा छात्रों की सफलता दर बढ़ भी गई है, क्योंकि तब से लगातार अजा व जजा आरक्षित सीटों पर प्रवेश पाने के लिए निर्धारित कट ऑफ अंक क्रमशः बढ़ते गए हैं।

उच्च शिक्षण संस्थानों में अजा तथा जजा के छात्रों के प्रदर्शन पर सबसे हालिया व्यवस्थित अध्ययन कृपाल तथा गुप्ता (1999) ने किया था, जिन्होंने प्रख्यात आईआईटी संस्थाओं पर ध्यान केंद्रित किया। यह बेहिकक माना जा सकता है कि आईआईटी में नामांकित होने वाले लगभग सभी अजा व जजा छात्र आरक्षित सीटों पर ही दाखिला पा सके होंगे क्योंकि भारतीय राष्ट्रीय शिक्षण संस्थानों में जो सबसे संभ्रांत व प्रतिष्ठित संस्थान थे, उनमें स्पर्धा भी गलाकाट है।<sup>14</sup> सातवे दशक में आईआईटी मुम्बई में अजा-अजा छात्रों के कई अध्ययन करने (कृपाल 1978; कृपाल व अन्य 1985अ, 1985ब) करने के बाद, इन दो विद्वानों ने भारत के पांचों आईआईटी संस्थानों मुम्बई, दिल्ली, कानपुर, खड़गपुर तथा चेन्नई परिसरों के बीटेक कार्यक्रमों में प्रवेश करने वाले अजा जजा छात्रों के 1981 से 1992 तक के आंकड़ों का संकलन किया।

कृपाल तथा गुप्ता ने पाया कि सभी अजा-जजा छात्रों की समेकित



औसत स्नातक दर 84 प्रतिशत थी, जबकि सामान्य प्रवेश वाले छात्रों की 94 प्रतिशत।<sup>15</sup> उनकी औसत ड्रॉप-आउट दर 1980 के दशक में 16 प्रतिशत रही, जबकि 1970 के दशक में यह दर कहीं अधिक ऊंची थी, जैसा कृपाल तथा अन्य (1985अ) एवं चिटनिस (1986) ने पाई थी। इस ऊंची ड्रॉप-आउट दर को देख आईआईटी संस्थानों ने भर्ती, तैयारी तथा छात्रों को टिकाए रखने के प्रयासों में सुधार किया। इसमें अजा-जजा आवेदकों के लिए साल भर लम्बा सुधार कार्यक्रम भी शामिल था। छात्रों के अकादमिक प्रदर्शन के विषय में कृपाल तथा गुप्ता के मुख्य निष्कर्ष को संक्षेप में 'मीन क्यूम्यूलेटिव पर्फॉमेंस इन्डेक्स (एमसीपीआई या माध्य संचयी प्रदर्शन सूचक) के रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है, जिसमें 1989 से 1992 के दौरान नामांकित सामान्य प्रवेश, अजा व जजा छात्रों के तकरीबन 10 प्रतिशत का सैम्पल लिया गया था। एमसीपीआई के आंकड़े 436 सामान्य प्रवेश छात्रों के लिए 7.88 था तथा 115 अजा छात्रों के लिए 6.23, व 21 जजा छात्रों के लिए 5.93। आईआईटी परीक्षाओं में स्पष्टतः सामान्य प्रवेश वाले छात्रों के प्रदर्शन की तुलना में अजा-जजा छात्रों का प्रदर्शन काफी पिछड़ा हुआ था, जिसमें कोई आश्चर्य भी न था। साथ ही अजा-जजा स्नातकों को अपने सामान्य प्रवेश वाले सहपाठियों की तुलना में अधिक समय भी लगता है। फिर भी यह तथ्य कि आईआईटी जैसी संस्थाओं में अजा-जजा छात्रों की स्नातक बनने की दर 80 प्रतिशत से अधिक है, यह सुझाता है कि आरक्षित सीटों के लाभार्थी तथा उनको दाखिला देने वाली प्रतिष्ठित संस्थाएँ महत्वपूर्ण सफलता पा रहे हैं।

### आरक्षण लाभार्थियों के तुलनात्मक रूप से खराब प्रदर्शन के कारण

जिन शोधकर्ताओं ने उच्च शिक्षण में अजा व जजा छात्रों के अनुभवों का अध्ययन किया है, उन्होंने उनकी संस्थाओं की परिस्थितियों व अवधि के अन्तरों के अनुरूप स्नातक बनने की विभिन्न दरें बताई हैं। परन्तु, वे सभी इस निष्कर्ष पर एकमत हैं कि औसतन अजा व जजा छात्रों का अकादमिक प्रदर्शन, अपने अन्य सहपाठियों से काफी कमतर होता है। ठेठ अजा व जजा छात्र कम प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में पढ़ते हैं; वे, अधिकांशतः, ऐसे विषयों का अध्ययन करते हैं जो कम आशाप्रद हों, अपनी स्नातक डिग्री पाने में उन्हें अधिक समय लगता है, उनकी ड्रॉप-आउट दर ऊंची होती है और परीक्षा में प्राप्त अंक कमतर होते हैं। भारत की आरक्षण नीतियों के लाभार्थी छात्रों के खराब प्रदर्शन के संभावित कारणों का अभाव नहीं है।

अव्वल तो अजा-जजा छात्र- कुछ अपवादों को छोड़ दें तो- अपने

सहपाठियों की तुलना में कम संपन्न सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि से आते हैं। पिछले भागों में जितने शोधकर्ताओं के काम को उद्धृत किया गया है, वे इस तथ्य के प्रमाण उपलब्ध करवाते हैं कि अजा जजा छात्रों का सामाजिक-आर्थिक स्तर तुलनात्मक रूप से नीचा है। उदाहरण के लिए, आइकारा (1980; तालिका 4.2) ने पाया कि अजा छात्रों में मात्र 5 प्रतिशत छात्र ही ऐसे थे, जिनके माता-पिता में कम-से-कम एक शिक्षित हो, जबकि गैर-अजा छात्रों में ऐसे छात्रों का प्रतिशत 32 था। 34 प्रतिशत अजा के छात्रों के माता-पिता दोनों ही निरक्षर थे, जबकि गैर अजा छात्रों में यह प्रतिशत 11 ही था। इसके अलावा उपलब्ध 88 प्रतिशत अजा छात्रों को कम से कम आंशिक छात्रवृत्ति उपलब्ध थी ताकि वे पढ़ाई जारी रख सकें तथा मात्र 4 प्रतिशत ही मुख्यतः या अंशतः माता-पिता या संबंधियों से आर्थिक सहयोग पाते थे। इसके विपरीत गैर-अजा छात्रों में ये आंकड़े क्रमशः 14 व 64 प्रतिशत थे। आइकारा (1980 : तालिका 3) ने यह भी गौर किया कि अजा छात्रों का कॉलेज छोड़ देने (ड्रॉप-आउट होने) का प्राथमिक कारण था परीक्षाओं में असफल होना। परन्तु इतना ही महत्वपूर्ण दूसरा कारण था परिवार और स्वयं के लिए आर्थिक बन्दोबस्त करने के लिए रोजगार की आवश्यकता। उनका निष्कर्ष यह था कि अजा-जजा छात्रों में अपव्यय या गतिहीनता की दर कम करने के लिए अधिक आर्थिक सहयोग की आवश्यकता होगी।

बी जे मेडिकल कॉलेज पुणे के अपने अध्ययन में पटवर्धन तथा पलशीकर (1992) ने पाया कि सामान्य प्रवेश वाले 40 प्रतिशत छात्रों के माता-पिता या अभिभावक व्यवसायी थे, जबकि केवल 1 प्रतिशत के माता-पिता श्रमिक थे। उन्होंने यह भी पाया कि सामान्य प्रवेश वाले 53 प्रतिशत छात्र ब्राह्मण परिवारों से थे। अजा अथा जजा, दोनों ही श्रेणियों में मात्र 9 प्रतिशत के माता-पिता या अभिभावक व्यवसायी थे तथा क्रमशः 21 व 17 प्रतिशत के श्रमिक वर्ग थे।

प्रतिष्ठित आईआईटी संस्थानों में अजा व जजा छात्रों की पारिवारिक पृष्ठभूमि सामाजिक-आर्थिक रूप में तुलनात्मक रूप से ऊंची थी, फिर भी, यह सामान्य प्रवेश वाले छात्रों से औसतन काफी नीचे थी। कृपाल तथा गुप्ता (1999 : तालिका 2.3, 2.4) ने दर्ज किया कि उनके सैम्पल के 54 प्रतिशत सामान्य प्रवेश वाले आईआईटी छात्रों के पिता उच्च पद के कार्यकारी अधिकारी थे, 22 प्रतिशत के पिता शिक्षाविद् थे; 66 प्रतिशत के पिता स्नातकोत्तर या प्रोफेशनल डिग्रीधारी थे। इसके विपरीत अजा छात्रों में ये आंकड़े क्रमशः 27 प्रतिशत, 21 प्रतिशत व 34 प्रतिशत थे; तथा जजा छात्रों में क्रमशः 29 प्रतिशत, 10 प्रतिशत व 24 प्रतिशत थे। कृपाल तथा गुप्ता (1999 : तालिका

2.7) ने यह भी दर्ज किया कि सामान्य प्रवेश वाले 84 प्रतिशत छात्र अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक स्कूलों में पढ़कर आए थे, जबकि 63 प्रतिशत अजा तथा 38 प्रतिशत जजा छात्र ऐसा कर पाए थे।

वेलासकर (1986) ने मुम्बई के मेडिकल कॉलेजों के अपने अध्ययन में भी यह पुष्टि की कि, सामान्यतः, अजा छात्र कॉलेज में अधिक विपन्न सामाजिक-आर्थिक व अकादमिक पृष्ठभूमि से आते हैं, यही कारण है कि उनका प्रदर्शन ओबीसी या सामान्य छात्रों की तुलना में अधिक कमजोर रहता है। अजा छात्र अन्य छात्रों की तुलना में नीची गुणवत्ता वाले प्राथमिक व माध्यमिक स्कूलों में पढ़ते हैं; उनमें से कुछ ही ऐसे होते हैं जो उन विशेष सहायक कक्षाओं या कोचिंग कक्षाओं का खर्च वहन कर सकें। जो परीक्षाओं के लिए उन्हें तैयार करते हों। तमाम अन्य शोधकर्ताओं की तरह वेलासकर भी यह गौर कर सकीं कि अजा छात्रों में एक छोटा अल्पसंख्यक वर्ग है जो शेष छात्रों के समान प्रदर्शन कर पाता है। कुछ अपवादों को छोड़कर, ऐसे छात्र अमूमन अधिक संपन्न परिवारों से आते हैं और अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में पढ़े होते हैं।

वेलासकर तर्क करती हैं कि अधिकांश अजा छात्रों का तुलनात्मक रूप से कमजोर प्रदर्शन का स्पष्टीकरण उनकी भिन्न सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि से कहीं अधिक पृष्ठभूमि में समझा जा सकता है। अजा छात्रों के परिवार निश्चित रूप से संपन्न नहीं होते परन्तु इन आर्थिक समस्याओं के बावजूद- 1980 के दशक तक उनका सामाजिक-आर्थिक स्तर (सोश्यो-इकोनॉमिक स्टेटस या एसईएस) लगभग सामान्य प्रवेश वाले उन छात्रों के समान हो चुका था जो कम संपन्न श्रेणी के थे। सामान्य प्रवेश वाले छात्रों की तुलना में अजा छात्रों का सबसे बड़ा अभाव 'सांस्कृतिक पूंजी' के अर्थ में देखा जा सकता है। अजा छात्रों की सांस्कृतिक पूंजी की विपन्नता का प्रमाण हमें उनके परिवारों के सदस्यों में शिक्षा के निम्न स्तर में, शिक्षाप्रद सांस्कृतिक गतिविधियों में कमतर भागीदारी में तथा सीखने को प्रोत्साहित न करने वाला पारिवारिक परिवेश के होने में मिलता है। सबसे महत्वपूर्ण यह है कि आधुनिक भारत की सांस्कृतिक पूंजी का स्रोत है अंग्रेजी भाषा का अच्छा ज्ञान- जिसका अजा छात्रों के पास अभाव होता है।<sup>16</sup> संभावना यही अधिक होती है कि सामान्य प्रवेश वाले जिन छात्रों का सामाजिक-आर्थिक स्तर अजा छात्रों के समान हो, उनके पास भी आर्थिक-सांस्कृतिक पूंजी मय बेहतर अंग्रेजी भाषा ज्ञान के मौजूद हों। उच्च आर्थिक-सामाजिक स्तर से अलग मजबूत सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का महत्त्व है, यह संकेत हमें सामान्य प्रवेश वाले छात्रों में ब्राह्मणों की भारी संख्या से मिलता है। कई

ब्राह्मण छात्रों के परिवार कमतर सामाजिक-आर्थिक स्तर के होते हैं, परन्तु कमजोर सामाजिक-आर्थिक स्तर के बावजूद वे सांस्कृतिक-पूंजी के अर्थ में दलित परिवारों की तुलना में कहीं अधिक संपन्न होते हैं।

वेलासकर संकेत करती हैं कि अजा छात्रों को अमूमन समस्तरीय स्वीकारा नहीं जाता- एक तो इसलिए कि उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि हीन होती है, पर इसलिए भी उनकी अकादमिक पृष्ठभूमि व प्रदर्शन भी कमतर होता है। कृपाल तथा गुप्ता (1999 : अध्याय 4, 5) आईआईटी संस्थानों में भी ठीक इसी प्रवृत्ति की मौजूदगी का प्रमाण उपलब्ध करवाते हैं। सामान्य प्रवेश वाले संपन्न आईआईटी छात्रों को अपने परिवारों के वातावरण का लाभ मिलता है, जो शैक्षिक सफलता के अधिक अनुकूल होता है, साथ ही ऐसे स्कूलों में माध्यमिक शिक्षा भी मिलती है जहां गैर-अकादमिक साधन-सुविधाओं के साथ बेहतर अकादमिक वातावरण भी हो। ये सभी घटक उनके आत्मविश्वास व भाषागत दक्षता में योगदान करते हैं, जो साक्षात्कारों तथा मौखिक परीक्षाओं में मददगार सिद्ध होते हैं। इधर अजा छात्रों को, गैर-अजा छात्रों के तिरस्कार के कारण सामाजिक दूरी झेलनी पड़ती है, जो उनकी निजी हीन-भावना के कारण और भी जटिल बन जाती है। कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों में अजा छात्रों के साथ सामाजिक भेदभाव भारतीय जीवन की सच्चाई है। परन्तु जो बात बहुत स्पष्ट नहीं है, वह यह कि यह भेदभाव मूलतः जाति-आधारित है अथवा सांस्कृतिक अन्तरों के कारण। इस प्रकार की बाधा को लांघने के लिए किसी अजा छात्र को विशेष उत्प्रेरण तथा प्रयास की आवश्यकता पड़ती है, साथ ही ऐसे वातावरण की भी जो सहायक हो- इसमें अन्य छात्रों की मित्रता व सहायता भी शामिल है।

1970 के दशक तथा 1980 के प्रारंभिक वर्षों में आंध्र प्रदेश के कुछ उच्च शिक्षण संस्थाओं ने सर्वेक्षण आधारित शोध अध्ययनों की एक शृंखला आयोजित की, जिसका प्रतिवेदन परमाजी ने 1985 में प्रस्तुत किया। 'अगड़ी जातियों', 'पिछड़ी जातियों' तथा अजा व जजा में अन्तर करते हुए उन्होंने पाया कि परीक्षाओं में प्रदर्शन का जाति के स्तर से सकारात्मक व महत्वपूर्ण संबंध है। वे निम्न जातियों के कमजोर प्रदर्शन को निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति के बनिस्बत सांस्कृतिक प्रवचन से अधिक जोड़ते हैं क्योंकि उन्होंने पाया कि समान सामाजिक-आर्थिक स्तर के बावजूद 'सुसंस्कृत' (सैंस्क्रिटाइड) जातियों से आने वाले छात्र अन्य जातियों के छात्रों की तुलना में बेहतर प्रदर्शन कर पाते हैं। 'सैंस्क्रिटाइजेशन' से उनका अर्थ एम. एन.श्रनिवास (1962) की तरह ही उस प्रवृत्ति से था जिसमें निचली

जातियां ब्राह्मणवादी संस्कृति की नकल करती है, जिसका मतलब है कि वे बेहतर भाषागत दक्षताएं व सांस्कृतिक स्तर हासिल करते हैं। रोचक तथ्य यह है कि परमाजी ने इस बात के प्रमाण भी पाए कि आवासीय कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे छात्रों में, प्रवेश से लेकर अध्ययन समाप्ति तक उनके प्रदर्शन में आने वाले सुधार का जाति स्तर (किसी भी स्तर पर प्रदर्शन के निरपेक्ष स्तर से विपरीत) से प्रतिलोम (विपरिवर्तित) संबंध है। उनका निष्कर्ष यह है कि शिक्षा के बाद के स्तर में उद्दीपक माहौल विगत सांस्कृतिक प्रवंचना को लांघने में निचली जातियों की सहायता देता है।

जितने भी विद्वानों ने सामाजिक-आर्थिक स्तर तथा अकादमिक प्रदर्शन के पारस्परिक संबंध को जांचा है, वे यह पुष्टि करते हैं कि उच्च शिक्षण संस्थानों में सामाजिक-आर्थिक स्तर (एसईएस) का अच्छे अकादमिक प्रदर्शन से सह-संबंध है। यह बात न केवल विभिन्न वर्गों के छात्र समूहों में (सामान्य प्रवेश, अजा, जजा आदि) मिलती है; परन्तु पटवर्धन तथा पलशीकर (1992) ने इस सह-संबंध में एक रोचक पेच भी पाया। पुणे के विख्यात मेडिकल कॉलेज के उनके छात्र सैम्पल में उन्होंने पाया कि जो छात्र सबसे निचले सामाजिक-आर्थिक स्तर के परिवारों से थे (निरक्षर तथा/अथवा श्रमिक वर्ग के) वे परीक्षाओं में उन छात्रों से बेहतर प्रदर्शन कर रहे थे जिनके परिवार मध्यम सामाजिक-आर्थिक स्तर के थे (उदाहरणार्थ, निम्न स्तरीय सरकारी नौकरियां करने वाले या स्कूली शिक्षक)। इसके ही समानान्तर रूप में सबसे अधिक सुविधा पाने वाली दलित उप-जाति (महार) के छात्र अन्य दलित उप-जातियों के छात्रों की तुलना में कमतर प्रदर्शन कर रहे थे, अतः लेखक द्वय अनुमान यह लगाते हैं कि ऐसे परिवार जो सामाजिक-आर्थिक तथा जातिगत सोपान की निचली पायदान तक पहुंच चुके हैं, उनसे आने वाले छात्र, उन अन्य छात्रों की तुलना में कहीं अधिक आत्मतुष्ट बन जाते हैं, जो निम्नतम स्तर से उबरने के संघर्ष में जुटे हैं।

(पटवर्धन एवं पलशीकर 1992 : 33-34)

### भाग-III

#### आरक्षण नीतियों के लाभार्थियों का विश्वविद्यालयोपरान्त जीवन-पथ संबंधी प्रमाण

सकारात्मक भेदभाव नीतियां अपने लक्ष्य को किस हद तक पा सकी हैं इसका आकलन करने के किसी प्रयास में उन प्रमाणों पर गौर करना भी महत्वपूर्ण होगा कि लाभार्थियों का जीवन-पथ (कैरियर पाथ) कैसा रहा। इस प्रकार के व्यवस्थित प्रमाण पाना कठिन है, क्योंकि इसमें प्रतिनिधि सैम्पल में शामिल भूतपूर्व छात्रों के कॉलेज

तथा/या विश्वविद्यालय के डिग्री कार्यक्रम पूरा कर लेने- या उसे बीच में, छोड़ देने- के काफी बाद तक की सूचना एकत्रित करनी पड़ती है। अतः आश्चर्य नहीं, फिर भी खेद की बात है, कि भारत में आरक्षण नीतियों के अजा व जजा लाभार्थियों के बारे में इस प्रकार के व्यवस्थित प्रमाण नहीं के बराबर हैं। यहां मैं उन चार अध्ययनों के विषय में सूचनाएं प्रस्तुत करूंगा, जिनमें उच्च शिक्षा के बाद दलित तथा आदिवासी छात्रों के जीवन पथों पर किसी न किसी प्रकार से कुछ उल्लेख है।<sup>17</sup>

वानखेडे (1978) ने मिलिन्द कॉलेज ऑफ आर्ट्स (एमसीए), औरंगाबाद, महाराष्ट्र के छात्रों के एक सैम्पल पर ऐसा शोध किया था। एमसीए भारत का पहली उच्च शिक्षा संस्था है, जिसे खासतौर से दलितों के लिए स्थापित किया गया था। इसकी स्थापना श्री बी.आर.अम्बेडकर ने की थी। लोक शिक्षण समिति इसको संचालित करती है, जिसने बाद में औरंगाबाद में इसी तर्ज पर कई अन्य हाई स्कूलों तथा कॉलेजों (विधि, वाणिज्य, विज्ञान) की भी स्थापना की। इन संस्थाओं में अधिकांश छात्र तथा कई शिक्षक दलित हैं तथा छात्रों को अधिकांश सरकारी स्कूलों की तुलना में अधिक आसानी से छात्रवृत्तियां, विशेष सुविधाएं तथा अतिरिक्त ध्यान मिलता है। जाहिर है कि एमसीए के दलित छात्र उच्च शिक्षा में भारत की आरक्षण नीतियों के तहत आरक्षित सीटों के लाभार्थी नहीं हैं। फिर भी, उनके अनुभव ऐसी नीतियों के अध्ययन के लिए प्रासंगिक हैं क्योंकि वे ऐसे दलित छात्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो प्रतिष्ठित सरकारी उच्च शिक्षण संस्थानों में आरक्षित सीटों के लिए योग्य सिद्ध हो सकते हैं। अतः, वे एक नियंत्रण समूह के रूप में काम आ सकते हैं, जिनसे आरक्षण नीतियों के वास्तविक लाभार्थियों के अनुभवों की तुलना की जा सके।

वानखेडे ने अपने शोध को उन एमसीए छात्रों पर केंद्रित किया जिन्होंने 1972 में बीए समाप्त किया था। इनमें अधिकांश छात्र दलितों की महार उप-जाति से थे, अधिकांश पुरुष थे, अविवाहित थे व नव-बौद्ध थे (यह शब्द उन दलितों के लिए प्रयुक्त होता है, जिन्होंने 1956 में अम्बेडकर द्वारा धर्म परिवर्तन के बाद बौद्ध धर्म अपनाया था)।<sup>18</sup> इस समूह में कितने छात्र बीए पूरा किए बिना ड्रॉप-आउट हो गए, इस विषय पर आंकड़े नहीं हैं। परन्तु एमसीए का स्नातक रिकॉर्ड अच्छा है, अतः संभव है कि जितने छात्र नामांकित होते हैं, वे, अंततः, स्नातक भी बनते हैं।

1972 में स्नातक बनने वाले सभी 170 एमसीए छात्रों को 1970 के दशक के मध्य में प्रश्नावलियां भेजी गईं तथा वानखेडे को लगभग तीन-चौथाई के प्रत्युत्तर मिले। उन्होंने पाया कि करीब आधे उत्तरदाता

स्नातकोत्तर स्तर एम.ए. के अध्ययन से जुड़े; तथा उनमें से लगभग 40 प्रतिशत वास्तव में अध्ययन पूरा कर स्नातकोत्तर डिग्री पा सके। सर्वेक्षण के समय करीब एक तिहाई एमसीए स्नातक आगे अध्ययन कर रहे थे। शेष आधे छात्र कम वेतनों वाली ऐसी नौकरियां कर रहे थे, जिनकी न्यूनतम योग्यता माध्यमिक परीक्षा उत्तीर्ण करना थी। किसी भी स्नातक को पहली या दूसरी श्रेणी की (क्लर्की या मजदूरी के विपरीत प्रशासकीय) सरकारी नौकरी नहीं मिल पाई थी, बावजूद इस तथ्य के कि इन नौकरियों के लिए अजा आरक्षण था। फिर भी अधिकांश स्नातकों को अपने पिताओं की तुलना में बेहतर काम मिले थे। उदाहरणार्थ, शारीरिक मजदूरी के बदले नौकरी तथा उनके वेतन भी औसतन तिगुने थे।

वानखेडे इन आंकड़ों से निराश हुए क्योंकि उन्हें सामाजिक गतिशीलता इतनी कम नजर आई। उन्हें लगा कि अनुकूल शैक्षिक वातावरण के बावजूद दलित छात्रों के जीवन-पथ परंपरागत विपन्न पृष्ठभूमि से निकल केवल उस स्थिति में ही पहुंच सके जिसे वानखेडे ने 'वंचित शिक्षित वर्ग' का नाम दिया। इसमें शंका नहीं कि ऐसा मुख्यतः इसलिए हुआ क्योंकि भारत में कॉलेजों से स्नातक डिग्रीधारियों के लिए संभावनाएं आमतौर पर काफी कम हैं। यहां की अर्थव्यवस्था में जैसे भी उच्च शैक्षिक योग्यता की मांग करने वाले उपलब्ध पदों के लिए नौकरी चाहने वालों की संख्या आवश्यकता से कहीं अधिक है। परन्तु इन आंकड़ों ने यह भी सुझाया कि अगर अजा व जजा छात्रों के लिए आरक्षण का कोई सकारात्मक प्रभाव होना हो, तो फिर यह भी आवश्यक होगा कि ऐसी संस्थाओं में भी आरक्षण लागू हो, जिनके स्नातक बेहतर नौकरियां पाने की स्थिति में होते हैं।

ऐसी संस्थाओं में मुम्बई के वे मेडिकल कॉलेज हैं, जिनका अध्ययन वेलासकर (1986) ने किया था और जिन्हें राष्ट्रीय मानकों के अनुसार भी काफी अच्छा माना जाता है।<sup>19</sup> जैसा पहले कहा जा चुका है, वेलासकर ने पाया कि ऐसे कॉलेजों में नामांकित अजा छात्रों में (जो आरक्षित सीटों के कारण प्रवेश पा सके) अधिकांश स्नातक बने। यद्यपि उन्हें गैर अजा छात्रों की तुलना में पढ़ाई पूरी करने में अधिक समय लगाना पड़ा। यद्यपि वेलासकर व्यवस्थित स्नातकोत्तर सर्वेक्षण नहीं कर पाई, वे यह सुनिश्चित कर सकीं कि अजा के स्नातक अंततः कमोबेश जिम्मेदार तथा अच्छे वेतन वाले चिकित्सा पदों पर पहुंच सके।

वेलासकर को अजा तथा गैर अजा छात्रों द्वारा चुनी जाने वाली विशेषज्ञताओं तथा स्नातकोत्तर कैरियर की प्रकृति में भी कुछ रोचक अन्तर मिले। अजा छात्र नैदानिक क्लिनिकल पाठ्यक्रमों व प्रशिक्षणों

में सैद्धान्तिक पाठ्यक्रमों से कहीं अधिक अभिमुख होते हैं तथा बेहतर प्रदर्शन करते हैं। यह संभावना अजा छात्रों में अधिक रहती है कि वे सामान्य चिकित्सक (जीपी या जनरल प्रैक्टिशनर्स) बनें, जबकि गैर अजा छात्र अमूमन विशेषज्ञ (अक्सर परामर्शदाता) बनते पाए गए। जाहिर स्तर पर अजा मेडिकल स्नातक अपने रोगियों के साथ अच्छे संपर्क व संबंध को गैर-अजा स्नातकों की तुलना में अधिक मूल्यवान मानते पाए गए। वेलासकर ने पाया कि, अमूमन अजा मेडिकल छात्र (साथ ही तुलनात्मक रूप से निचले सामाजिक-आर्थिक स्तर के गैर अजा छात्र) जरूरतमंद समुदायों की सेवा करने और मदद करने के प्रति अधिक उत्प्रेरित रहते थे। इसके विपरीत सामान्य प्रवेश वाले उच्च सामाजिक-आर्थिक स्तर के छात्र (जो अक्सर चिकित्सक/प्रोफेशनल परिवारों के उत्पाद होते हैं) अपनी जीविका संबंधी महत्वाकांक्षाओं में अधिक भौतिकवादी थे।

उच्च शिक्षा में भारत की आरक्षण नीतियों के लाभार्थी स्नातक डिग्री पाने के बाद कैरियर में क्या कर पाते हैं, इसके संबंध में सर्वश्रेष्ठ व सुव्यवस्थित प्रयास पटवर्धन एवं पलसीकर (1992) ने ही किया। इन विद्वानों ने पहले तो बी जे मेडिकल कॉलेज, पुणे के 1972 तथा 1952 के स्नातकों के एक बड़े व श्रेणी विभाजित सैम्पल को चुना और उसके प्रत्येक व्यक्ति को एक प्रश्नावली भेजी। उनको 100 प्रत्युत्तर मिले, जो उन्हें अपने सैम्पल का समुचित प्रतिनिधित्व करने लगे (उत्तरदाताओं की विशेषताओं की तुलना व्यापक समूह से करने पर)। ये उत्तरदाता प्रमुख प्रवेश श्रेणियों में इस प्रकार बंटे हुए थे : सामान्य प्रवेश-26; ओबीसी-34; अजा-30; जजा-3; विमुक्त अजा जातियां-7 इसमें अंतिम चार श्रेणियां (जिन्हें सैम्पल में अधिक बड़ी संख्या में शामिल किया गया था) आरक्षित सीटों वाले समूह से थे, जिनसे 74 उत्तरदाता आते थे।

सामान्य प्रवेश तथा आरक्षित सीटों वाले उत्तरदाता- खासकर अंतिम तीन श्रेणियों के उत्तरदाताओं- अपनी परिवारिक पृष्ठभूमि के चलते बिल्कुल भिन्न-भिन्न थे। अजा, जजा तथा विमुक्त जनजाति के चिकित्सकों का केवल एक बटा आठ भाग ही उच्च सामाजिक-आर्थिक स्तर के परिवारों से थे, जबकि निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के परिवारों से आने वाले सामान्य प्रवेश वाले चिकित्सकों की संख्या बेहद कम थी। अधिकांश अजा, जजा तथा विजा चिकित्सकों को चिकित्सा पाठ्यक्रम का अध्ययन बेहद कठिन लगा था (खासतौर से मौखिक परीक्षाएं); उन्हें लगा कि उनके अकादमिक प्रदर्शन पर अक्सर गैर-अकादमिक घटकों- जैसे शिक्षकों की सहानुभूतिहीनता या कई बार तो उनके तिरस्कार भरे आचरण का असर पड़ा था। इन 100

उत्तरदाताओं में से 4 स्नातकोत्तर चिकित्सा डिग्री पूरी करने की प्रक्रिया में थे; शेष में से तकरीबन एक तिहाई सरकारी चिकित्सा सेवा में थे और दो-तिहाई निजी प्रैक्टिस कर रहे थे। अजा, अजा तथा विजा चिकित्सकों के अनुपात से कहीं अधिक सरकारी नौकरी में होने की संभावना थी- जो निजी प्रैक्टिस की तुलना में कहीं अधिक सुरक्षित परन्तु कम फायदेमंद है। इस प्रवृत्ति के मिश्रित कारण थे- आत्मविश्वास की कमी, पूंजी तथा संसाधनों का अभाव, जोखिम उठाने से घबराना- और कुछ मामलों में अजा, जजा व विजा चिकित्सकों की यह भावना कि सार्वजनिक क्षेत्र में उनके साथ अधिक न्यायोचित बर्ताव होगा (फिर चाहे वे आरक्षित पदों के प्रत्यक्ष लाभार्थी हों या न हों)।

मोटे तौर पर तीन सर्वाधिक कम प्रतिनिधित्व वाले समूहों के उत्तरदाता चिकित्सक काफी ठीक कर रहे थे। उनमें लगभग आधे निजी प्रैक्टिस कर रहे थे और बाकि आधे सरकारी नौकरियों में थे। लगभग सभी की आय व सामाजिक-आर्थिक स्तर अपने माता-पिता की तुलना में कहीं अधिक था; गोकि सामान्य प्रवेश व ओबीसी के अपने सहकर्मियों की तुलना में वे कमतर थे। यह माना जा सकता है कि निजी प्रैक्टिस करने वाले अजा, जजा तथा विजा के चिकित्सक संभवतः दूरस्थ ग्रामीण इलाकों या विपन्न शहरी इलाकों में कार्यरत होंगे व उनके पास आने वाले रोगी भी मुख्यतः उनके ही समुदाय के लोग होंगे। परन्तु उत्तरदाताओं के मामले में ऐसी स्थिति नहीं थी। यद्यपि अजा-जजा तथा विजा चिकित्सकों का स्थान व उनके मरीज सामान्य प्रवेश वाले या ओबीसी चिकित्सकों की तुलना में उतने ऊंचे तबके के नहीं थे और ऊंची जाति के रोगी अजा, जजा तथा विजा चिकित्सकों के पास कम और दूसरे चिकित्सकों के पास अधिक जाते, फिर भी वे विभिन्न समुदायों और समूहों के मरीजों की चिकित्सा करते पाए गए।

पटवर्धन तथा पलसीकर (1992) ने इन 100 उत्तरदाताओं में से 42 के साथ व्यक्तिगत साक्षात्कार भी आयोजित किए, जिसके आधार पर वे दाखिले की पांचों श्रेणियों का प्रतिनिधित्व करने वाले चिकित्सकों की जीवन शैलियों व नजरिए का विस्तृत वर्णन दे पाए। इन साक्षात्कारों ने उनके इस निष्कर्ष की पुष्टि की कि आरक्षित सीटों के स्नातक-खासकर अजा, जजा व विजा के चिकित्सक- सफलतापूर्वक आगे बढ़ सके और बेहतर सामाजिक-आर्थिक स्तर हासिल कर सके; साथ ही सभी आरक्षित सीटों के माध्यम से स्नातक बने ये चिकित्सक क्षमतावान चिकित्सक थे। दोनों अध्ययन-कर्ता इस व्यापक धारणा को सिरे से खारिज करते हैं कि आरक्षित सीटों के अधिक वंचित छात्र कुशल चिकित्सक बनकर निजी प्रैक्टिस स्थापित नहीं कर पाते। साक्षात्कारों का प्रमाण यह भी दिखाता है कि सामान्य प्रवेश तथा ओबीसी के

छात्रों की बेहतर सामाजिक-आर्थिक पारिवारिक पृष्ठभूमि उनके लिए लाभदायक सिद्ध होती है और वे अपने कैरियर को बढ़ाने के लिए पूंजी संपर्क तथा दूसरी तरह की सहायता पाते हैं। दूसरी ओर, प्रमाण इस बात के भी मिलते हैं कि सर्वाधिक सफल अजा, जजा तथा विजा चिकित्सक- जो मेडिकल अध्ययन के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम पूरे कर प्रतिष्ठित पदों पर पहुंच चुके हैं, अर्थात् जो शीर्षस्थ सामान्य प्रवेश वाले चिकित्सकों के समान स्तर पर आ चुके हैं- संपन्न संभ्रात प्रोफेशनल का जामा ओढ़ना पसंद करते हैं और अपनी वंचित जाति या आदिवासी समुदाय से संपर्क सीमित कर उसका नेतृत्व भी त्याग देते हैं।

कृपाल तथा गुप्ता (1999) ने, पांच मुख्य आईआईटी संस्थानों की आरक्षण नीतियों के अध्ययन में उनके स्नातकों की इस प्रकार की सूचनाएं एकत्रित नहीं कीं। परन्तु उन्होंने मौजूदा अजा व जजा छात्रों के सैम्पल से भावी योजनाओं व कैरियर लक्ष्यों संबंधी प्रश्न पूछे। उनके 60 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने संकेत किया कि वे भविष्य में स्नातकोत्तर अध्ययन में अथवा सरकारी नौकरियों (जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के साथ प्रशासकीय सेवाएं भी शामिल थीं) के लिए आवेदन करते समय आरक्षण नीतियों का सहारा लेंगे।<sup>20</sup> लगभग 15 प्रतिशत ने निजी क्षेत्र में नौकरी पाने की और 5 प्रतिशत ने स्वयं अपना कारोबार प्रारंभ करने की बात की। शेष में तकरीबन आधे उच्च डिग्री (अमूमन विदेश से) पाना चाहते थे। आरक्षण नीतियों के सर्वेक्षण से कृपाल तथा गुप्ता इस निष्कर्ष पर पहुंचे : 'जाहिर है कि आरक्षण लाभार्थियों के लिए सहायक रहा, मुख्यतः इससे उनका सामाजिक-आर्थिक स्तर बेहतर उनकी वित्तीय स्थिति बेहतर हुई तथा कैरियर विकल्पों में भी सुधार आया है। परन्तु... यह भी उतना ही स्पष्ट है कि जहां तक आन्तरिक विकास का प्रश्न है, आत्म-विश्वास, स्वीकार्यता, मुख्यधारा में समेकित होना तथा अपने पैरों पर खुद खड़े होना, इस अर्थ में अभाव नजर आता है।

(कृपाल एवं गुप्ता 1999 : 156-57)

#### भाग-IV : निष्कर्ष

उच्च शिक्षा के सभी स्तरों पर आरक्षण नीतियों ने जहां एक ओर अजा तथा जजा छात्रों को बेहतर विश्वविद्यालयी पाठ्यक्रमों में ऊपर बढ़ाया है, वहीं दूसरी ओर कई ऐसे अजा-जजा छात्रों को भी आकर्षित किया है जो अन्यथा उच्च शिक्षा में कदम नहीं रख पाते। मेरा मोटा-सा अनुमान है कि 1990 के अंतिम वर्षों में भारतीय विश्वविद्यालयों में जो सात लाख अजा-जजा छात्र पढ़ रहे थे, उनमें करीब आधों को आरक्षण नीतियों ने ही यह सामर्थ्य दिया था कि वे वंचित संस्थाओं या पाठ्यक्रमों में प्रवेश लें, न कि वे किसी तुलनात्मक रूप से औसत

विश्वविद्यालय या पाठ्यक्रम से समझौता कर लें, अन्यथा विश्वविद्यालय में नामांकित होने का विचार ही छोड़ दें। अजा-जजा आरक्षण के अधिकतर लाभार्थी विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में अपने सहपाठियों से कमतर तैयारी तथा अकादमिक योग्यता के साथ प्रवेश करते हैं, फिर आश्चर्य नहीं कि उनका प्रदर्शन भी उतना अच्छा नहीं रहता। परन्तु इस बात के प्रमाण भी मौजूद हैं कि विगत दशकों में प्रवेश परीक्षाओं में अजा व जजा छात्रों के प्राप्तांकों व अन्य छात्रों के प्राप्तांकों के बीच का अन्तर कम होता जा रहा है।

इस बात में भी शंका कम ही है कि भारतीय विश्वविद्यालय के प्रवेशों में अजा-जजा आरक्षण के अधिकांश लाभार्थी दलितों व आदिवासियों की 'मलाईदार परत' से आते हैं। जहां स्कूली शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक की राह में गरीबों के समक्ष इतनी विशाल बाधाएं हों, वहां इससे भिन्न हो भी क्या सकता था। इस बात के भी पर्याप्त प्रमाण हैं कि ये लाभार्थी अजा-जजा श्रेणी में भी अनुपातहीन रूप में अधिक संपन्न जातियों व जनजातियों से आते हैं। अतः अपने प्रत्यक्ष प्रभाव में आरक्षण नीतियों ने अजा व जजा आबादी में विद्यमान असमानताएं और बढ़ाई हैं। फिर भी उपलब्ध प्रमाण यह भी सुझाते हैं कि अजा व जजा छात्रों का औसत सामाजिक-आर्थिक स्तर अन्य छात्रों की तुलना में काफी कम है। अतः, यह संभव नहीं कि आरक्षण नीतियों ने शेष आबादी के आवेदकों की कीमत पर संपन्न दलितों व आदिवासियों को लाभ पहुंचाया है।

अजा व जजा के छात्रों का औसत अकादमिक प्रदर्शन एवं उनके स्नातक बनने की दर निश्चित रूप से अन्य छात्रों से कमतर है। उनकी कमजोर शैक्षिक पृष्ठभूमि व डिग्री पूरा करने के दौरान आने वाली विविध बाधाओं के मद्देनजर इसमें आश्चर्य भी नहीं होता। फिर भी भारत की प्रतिष्ठित उच्च शिक्षण-संस्थाओं में अजा व जजा छात्रों तथा अन्य छात्रों में स्नातक बनने की दर में इतना भारी अन्तर नहीं लगता। चुनिंदा संस्थाओं से इस बात के भी कुछ प्रमाण निकले हैं कि अजा व जजा छात्रों की स्नातक दरों में समय के साथ सुधार होता गया है क्योंकि इन संस्थाओं की प्रवेश योग्यताएं लगातार बढ़ी हैं और इन संस्थाओं ने सीखने-सिखाने के वातावरण को बेहतर बनाने के रास्ते भी तलाशे हैं।

भारत की उच्च शिक्षण-संस्थाओं से अध्ययन पूरा कर लेने के बाद छात्रों के कैरियर संबंधी सूचना एकत्रित करने वाले अध्ययन बेहद कम हुए हैं। किए गए चंद अध्ययन सुझाते हैं कि जो अजा-जजा छात्र प्रतिष्ठित संस्थानों से स्नातक बनते हैं, वे जिम्मेदार तथा अच्छे वेतन वाली नौरियां पाते हैं और उनका सामाजिक-आर्थिक स्तर उनके

माता-पिता की तुलना में कहीं ऊंचा होता है, अलबत्ता वह उनके गैर अजा-जजा सहपाठियों जितना बेशक नहीं होता। अजा-जजा व अन्य छात्रों के प्रदर्शन के बीच का अन्तर विश्वविद्यालय के परंपरागत रूप से मापे जाने वाले प्रदर्शन की तुलना में उसके उपरान्त की पेशागत उपलब्धियों में कहीं कम नजर आता है। यह तथ्य दो बातें सुझाता है : या तो (1) विश्वविद्यालयों के आन्तरिक मूल्यांकन मानक, उच्च शिक्षा से छात्र दरअसल क्या पा रहे हैं, को न्यूनोक्त करता है या फिर (2) अजा व जजा छात्र विश्वविद्यालय अध्ययन के बाद प्रगति कर अपने अन्य सहपाठियों के समस्तरीय बन जाते हैं।

सकारात्मक भेदभाव नीतियों के कुछ आलोचक यह मानते हैं कि जिन पाठ्यक्रमों में ऐसे लाभार्थी तरजीह पा प्रवेश लेते हैं, उनका प्रदर्शन इतना निकृष्ट होता है कि शायद उन्हें यह तरजीह न देना ही बेहतर रहता। ऐसे कोई गंभीर अध्ययन नहीं हैं, जिनमें आरक्षण नीति के लाभार्थियों की पेशागत उपलब्धियों की तुलना इन नीतियों की नामौजूदगी में उनसे रखी जाने वाली अपेक्षाओं से की गई हो। फिर भी जो सीमित प्रमाण उपलब्ध हैं, वे यह सुझाते हैं कि अजा व जजा छात्र प्रतिष्ठित उच्च शैक्षणिक संस्थानों से उचित दर पर स्नातक बन रहे हैं (गोकि उनका अकादमिक प्रदर्शन उनके सहपाठियों की तुलना में कमतर रहता है।) और अधिकांशतः ये स्नातक आगे चल अपने कैरियरों में भी सफल रहते हैं। यह प्रमाण तथा यह अकादमिक तथ्य कि प्रतिष्ठित संस्थान की डिग्री, सामान्य संस्थाओं से पाई डिग्री की तुलना में बेहतर कैरियर की संभावना का वादा करती है, सुझाता है कि अगर उन्हें इन प्रतिष्ठित संस्थानों में आरक्षित सीटों का अवसर न मिलता तो वे बेहतर रहते, यह धारणा कतई बेबुनियाद है।

आरक्षण नीतियों के कई आलोचक इस तथ्य को इन नीतियों की विफलता का प्रथम दृष्टया प्रमाण मानते हैं कि उच्च शिक्षण संस्थानों में प्रवेश में आरक्षण का लाभ अजा तथा जजा छात्रों की मलाईदार परत को ही पहुंच रहा है, ऐसे निष्कर्ष पर पहुंचना तब उचित होता अगर इन नीतियों का प्राथमिक लक्ष्य अजा व जजा समुदायों में शैक्षिक अवसरों को समान रूप से वितरित करना होता। परन्तु उच्च शिक्षण संस्थाओं में आरक्षण की नीति लागू करना ऐसे लक्ष्य को प्रोत्साहित करने का सही उपाय नहीं होता। इससे कहीं बेहतर उपाय यह होता है कि अजा तथा जजा की पहुंच प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा तक बढ़ाई जाए तथा जिन स्कूलों में अजा-जजा छात्र नामांकित हो उनकी गुणवत्ता को सुधारा जाए।

उच्च शिक्षण संस्थानों में प्रवेश के लिए सकारात्मक भेदभाव की नीतियों को ऐसे प्रयास के रूप में समझना चाहिए जो समाज के ऊपरी स्तर

को समेकित करने का हो और जो सबसे वंचित तथा स्वाल्प प्रतिनिधित्व वाले समुदायों के लोगों की पहुंच प्रतिष्ठित पेशों व निर्णय-प्रक्रिया में बढ़ाकर हासिल किया जा रहा हो।<sup>21</sup> समाज के प्रतिष्ठित तबके में इस प्रकार का समेकन कई लाभों का वादा करता है, जिसमें राजनीतिक व्यवस्था की अधिक वैधता; उन नौकरियों में बेहतर प्रदर्शन जिनमें वंचित समुदायों की बेहतर समझ की आवश्यकता पड़ती हो; अजा व जजा समुदायों के साधारण सदस्यों के लिए संसाधनों व नौकरियों में अधिक समान अवसर; अजा तथा जजा युवा वर्ग में भावी बेहतरी के लिए प्रोत्साहन; आदि शामिल हैं। इस नजरिए से उच्च शैक्षिक संस्थानों के प्रवेश में आरक्षण नीतियों की सफलता के मूल्यांकन में सबसे महत्वपूर्ण यह जानना होगा कि इन तुलनात्मक रूप से प्रतिष्ठित संस्थानों में आरक्षण लाभार्थी अपनी डिग्री हासिल कर सफल कैरियर की दिशा में बढ़ते हैं या नहीं। इस प्रश्न पर जो सीमित प्रमाण उपलब्ध हैं, वे यही सुझाते हैं कि भारत के प्रतिष्ठित उच्च शैक्षिक संस्थानों में नामांकित अजा व जजा छात्र निश्चित रूप से सफल कैरियरों की दिशा में बढ़ रहे हैं; आरक्षण नीतियों के अभाव में वे ऐसा जितना होता, उससे निश्चित रूप से कहीं अधिक संख्या में।<sup>22</sup>

आरक्षण के लाभार्थियों के विषय में विश्वविद्यालय के उपरान्त आंकड़ों की कमी इस दिशा में अधिक शोध की आवश्यकता की ओर संकेत करती है। उच्च शिक्षा में आरक्षण नीतियों के दूरगामी परिणामों पर अधिक व्यवस्थित आनुभाषिक शोध की आवश्यकता है- जैसी पलशीकर तथा पटवर्धन ने (1992) की थी। आशा है भविष्य में यह संभव होगा।<sup>23</sup>

## टिप्पणियां

(इस लेख की अधिकांश विषयवस्तु हाल में प्रकाशित मेरी पुस्तक 'अफरमेटिव एक्शन इन द युनाइटेड स्टेट्स एण्ड इण्डिया' व कम्पैटिटिव पर्सपेक्टिव, रुटलेज, लंदन : 2004 से ली गई है। खासकर उसके अध्याय-10 तथा 12 से।)

1. भारत की आरक्षण नीतियों के परिणामों से संबंधित जो आनुभाषिक प्रमाण इस आलेख में प्रस्तुत किए गए हैं उनका ताल्लुक अनुसूचित जाति (अजा) एवं अनुसूचित जनजाति (जजा) छात्रों से है। अन्य पिछड़ी जातियों (ओबीसी) के विषय में इस प्रकार का विश्लेषण करना हो तो हमें प्रत्येक राज्य में विस्तृत अध्ययन कर सूचनाएं एकत्रित करनी होंगी, क्योंकि भारत के विभिन्न राज्यों में ओबीसी की स्थिति फर्क-फर्क है।
2. मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली के वार्षिक प्रतिवेदनों में छात्र नामांकन के आंकड़े प्रस्तुत किए जाते हैं।
3. भारत की जनगणना के अधिकारक आंकड़ों के अनुसार 1981 में अजा एवं जजा का अनुपात क्रमशः 15.5 प्रतिशत एवं 7.8 प्रतिशत था तथा 1991 में क्रमशः 16.5 प्रतिशत तथा 8.1 प्रतिशत था।
4. गौर किया जाना चाहिए कि भारत में उच्च शिक्षा संस्थानों में अजा व जजा नामांकन वास्तविकता से अधिक होते हैं; क्योंकि कुछ गैर अजा व जजा आवेदक भी अजा व जजा होने का दावा कर इन संस्थानों में आरक्षित सीटों पर प्रवेश पा लेते हैं, जिनमें सामान्य श्रेणी में प्रवेश की योग्यता उनकी नहीं होती। उदाहरण के लिए देखें, वेलासकर (1986 : 600-01) तथा पटवर्धन व पलशीकर (1992 : 24)।
5. अजा व जजा समुदायों के सदस्यों की (साथ ही शेष आबादी की भी) शैक्षणिक उपलब्धियों संबंधी आंकड़े भारत में 1961 से प्रत्येक दशक पूरा होने पर एकत्रित किए जाते हैं। परन्तु अजा-जजा के आंकड़े केवल 1961, 1971 तथा 1981 के ही उपलब्ध करवाए गए हैं। 1961 की जनगणना में उच्च शिक्षण संस्थाओं के स्नातकों के आंकड़े केवल शहरी क्षेत्रों के हैं। मैंने 1961 के लिए अनुमान लगाते समय 1961 के शहरी आंकड़ों को 1971 की जनगणना में शहरी-ग्रामीण के अनुपात से गुणा किया।
6. केन्द्र द्वारा नियंत्रित संस्थानों में अजा व जजा आरक्षित स्थानों की नीति में अपवाद स्वरूप कुछ 'स्नातकोत्तर' अध्ययन केन्द्र हैं, जैसे- नई दिल्ली स्थित ऑल इण्डिया इन्स्टिट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेस तथा बंगलोर स्थित नेशनल इन्स्टिट्यूट ऑफ एडवान्स्ड स्टडीज। अजा के लिए आरक्षित स्थानों का प्रतिशत हमेशा से 15 प्रतिशत रहा है। जजा का आरक्षण प्रतिशत प्रारंभ में 5 प्रतिशत था पर 1982 में इसे बढ़ाकर 7.5 प्रतिशत कर दिया गया।
7. सिद्धान्ततः जो अजा व जजा (साथ ही ओबीसी) आवेदक इतने अच्छे अंक पाते हैं कि उनको सामान्य सीटों पर भी प्रवेश मिल सकता है, उन्हें आरक्षित कोटा में प्रवेश न देकर सामान्य श्रेणी में ही दिया जाना चाहिए। परन्तु व्यवहार में ऊंचे अंक पाने वाले छात्रों को भी अक्सर आरक्षित स्थानों पर ही प्रवेश दिया जाता है। इसका अर्थ हुआ कि अजा-जजा व ओबीसी छात्रों के नामांकन आंकड़े आरक्षण से लाभान्वित छात्रों की संख्या को बढ़ा-चढ़ाकर दर्शाते हैं।
8. उन शिक्षण संस्थाओं पर भी ध्यान देना चाहिए जो खासतौर से अजा तथा/अथवा जजा छात्रों के लिए बने हैं। उदाहरण के लिए, महाराष्ट्र में बी.आर.अम्बेडकर द्वारा दलितों में शिक्षा प्रसार के लिए स्थापित पीपल्स एज्युकेशन सोसायटी द्वारा चलाए जा रहे कॉलेज। यद्यपि ऐसे स्कूलों ने कुछ क्षेत्रों में वंचित छात्रों में शैक्षिक अवसरों में गुणात्मक तथा संख्यात्मक असर डाला है, परन्तु अखिल भारतीय संदर्भ में इनकी संख्या बेहद कम है।
9. पांच सबसे पुराने आई.आई.टी.- मुंबई, दिल्ली, कानपुर, खडगपुर तथा चेन्नई में हैं। 1990 के दशक के मध्य में गुवाहाटी में एक नया आईआईटी खोला गया।

10. ये अनुपात राव (2002 : तालिका-2) द्वारा एकत्रित नामांकन आंकड़ों पर आधारित हैं।
11. राव (2002 : 56) निर्देशात्मक उदाहरण के बतौर आंध्र प्रदेश की दो प्रमुख दलित जातियों माला तथा मडिगा की चर्चा करते हैं। इनमें माला जो मुख्यतः खेत-मजदूर हैं, स्वयं को मडिगा से श्रेष्ठ मानते हैं, जो पशुचर्म का काम करते हैं। माला जाति की शैक्षिक पहुंच हमेशा से अधिक रही है और वे अब उच्च शिक्षण संस्थानों में मडिगा की तुलना में आरक्षित स्थानों के बहुतायत पर काबिज हैं।
12. यह प्राकल्पना लेखक को वेलासकर ने 24 जनवरी 2002 को लिखी ई-मेल में सूचित की थी।
13. पटवर्धन तथा पलशीकर के सैम्पल में विमुक्त जनजाति के छात्र अजा व जजा छात्रों की तुलना में परीक्षाओं में बेहतर अंक पाते थे, परन्तु उनकी ड्रॉप-आउट दर अधिक ऊंची थी।
14. कृपाल एवं गुप्ता (1999) के अनुसार प्रतिवर्ष लगभग 80,000 आवेदकों में से केवल 2250 छात्र (मय 100 से कम अजा-जजा छात्रों के) ही प्रवेश पाते हैं। अर्थात् प्रवेश अनुपात करीबन 2.8 प्रतिशत है।
15. कृपाल तथा गुप्ता के आंकड़े दिखाते हैं कि सभी आईआईटी संस्थानों में खडगपुर अजा व जजा छात्रों को अनुपात से कहीं अधिक प्रवेश देता है तथा शेष चार मुख्य आईआईटी की तुलना में अधिक अजा-जजा छात्रों को स्नातक डिग्री देता है। अतः आलेख में दी गई अजा-जजा छात्रों की सफलता दर मुम्बई, दिल्ली, कानपुर तथा चेन्नई के आईआईटी संस्थानों, जो अधिक प्रतिष्ठित माने जाते हैं, में अजा-जजा छात्रों की सफलता दर को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करता है।
16. भारत में शैक्षिक असमानता में अंग्रेजी भाषा की भूमिका के लिए देखें कुमार (1997)।
17. मेरी जानकारी में ऐसे अध्ययन केवल ये ही हैं।
18. वानखेडे टिप्पणी करते हैं कि इन नव-बौद्ध छात्रों को स्वयं को हिन्दू घोषित करना पड़ा ताकि उन्हें हिन्दू अनुसूचित जातियों के लिए विशेष तौर पर सरकार द्वारा अनुदानित सुविधाओं (जैसे-छात्रावास) की सुविधा मिल सके।
19. 24 जनवरी 2002 को वेलासकर द्वारा लेखक को भेजी गई ई-मेल के अनुसार।
20. उच्च शिक्षण में आरक्षण के लाभार्थी अजा व जजा स्नातक, स्नातकोत्तर स्तर पर या सार्वजनिक नियुक्तियों में भी अतिरिक्त आरक्षण का लाभ पाते हैं। इस तथ्य का अर्थ यह हुआ कि उनकी कैरियर उपलब्धियों प्रारंभ में आरक्षण तक पहुंच के प्रभाव को कुछ बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करती हैं। अगर ऐसा हो तो भी यह स्वीकारना होगा कि आरक्षण की मदद से प्राप्त उन्नत अध्ययन में प्रवेश या नौकरियों में अजा-जा सदस्यों की सफलता इस कारण संभव होती है कि उन्हें

थॉमस ई. वाइसकॉफ़ ♦ —————

यूनिवर्सिटी ऑफ मिशिगन के इक्नॉमिक्स एण्ड  
द रेजिडेन्शियल कॉलेज में पढ़ाते हैं।

————— ♦

- प्रारंभ में आरक्षण के बूते ही उच्च शिक्षण संस्थानों में प्रवेश मिला जिसके चलते वे आवश्यक तैयारी और प्रशिक्षण पा सके।
21. सकारात्मक भेदभाव के उद्देश्यों की यह समझ एलिजाबेथ एन्डरसन (2000, 2002) ने सर्वाधिक सशक्त रूप में मुखरित की है।
  22. इस निष्कर्ष को भारत में आरक्षण नीतियों के अन्य अध्ययनकर्ताओं का भी समर्थन मिला है। गैलेन्टर, जिन्होंने कानूनी नजरिए से भारत में आरक्षण नीतियों का समग्र अध्ययन किया था, ने लिखा : ‘... क्षतिपूरक भेदभाव आंशिक तथा मंहगी सफलता रही है। यद्यपि गांवों में बसे विशाल भूमिहीन जन-समुदाय तक प्रत्यक्ष लाभ बेहद कम पहुंचे हैं, क्षतिपूरक भेदभाव ने निश्चित रूप से इन समूहों (अजा व जजा) में एक मध्यम वर्ग के विकास को गति दी है- जो शहरी, शिक्षित तथा अधिकतर सरकारी नौकरियों में कार्यरत हैं। इन समूहों के सदस्य समाज में ऐसी केन्द्रीय भूमिकाओं में लाए गए हैं जिसकी कुछ दशक पहले कल्पना तक नहीं की जा सकती थी...’ (गैलेन्टर, 1984 : 551)। गैलेन्टर के काफी बाद समाज विज्ञानी मेन्डेलसोडन तथा विक्रिजएनी इस निष्कर्ष पर पहुंचे : ‘बेशक हजारों अस्पृश्यों को महत्वपूर्ण लाभ मिल पाए हैं, तथा सार्वजनिक नौकरियों तथा उच्च शिक्षा संस्थानों में नाजायज भेदभाव भी मिट सका है। इसके अलावा बड़ी संख्या में कुशल तथा व्यावसायिक रूप से अनुभवी अस्पृश्यों के उभरने को यह कहकर अनदेखा नहीं किया जा सकता कि वे अस्पृश्यों की अधिक बड़ी आबादी में केवल खमीर की तरह हैं’ (मेन्डलसोडन तथा विक्रिजएनी 1998 : 146)।
  23. आईआईटी मुम्बई में दो अन्य समाज विज्ञानियों के साथ मैंने 2001 में अजा व जजा छात्रों तथा (कन्ट्रोल ग्रुप के रूप में) अन्य आईआईटी स्नातकों के कैरियर पथों के व्यवस्थित अध्ययन की चेष्टा की। दुर्भाग्य से हमारे शोध प्रस्ताव को संबंधित अधिकारियों का अनुमोदन नहीं मिल पाया। संभवतः इसलिए क्योंकि यह विषय राजनैतिक रूप से संवेदनशील विषय है। ♦

**भाषान्तर : पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा**